Downloaded from https:// www.studiestoday.com

कक्षा
11

आजादी के बाद का स्वर्णिम भारत

भाग–1

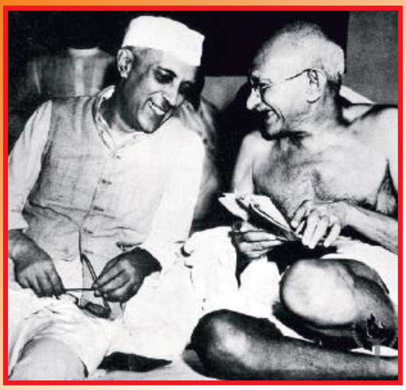

माध्यमिक शिक्षा बोर्ड राजस्थान, अजमेर

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

आजादी के बाद का स्वर्णिम भारत

भाग–1

कक्षा 11

माध्यमिक शिक्षा बोर्ड राजस्थान, अजमेर

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

पाठ्यपुस्तक निर्माण समिति

आजादी के बाद का स्वर्णिम भारत
(भाग–1)

कक्षा 11

संयोजक

प्रोफेसर बी. एम. शर्मा
पूर्व अध्यक्ष
राजस्थान लोक सेवा आयोग, अजमेर

लेखकगण

डॉ. आशिष व्यास
सहायक आचार्य, इतिहास
उपायुक्त, मिडडे–मील, जयपुर

डॉ. सुनीता पालावत
सह आचार्य, अर्थशास्त्र
राजकीय महाविद्यालय,
जयपुर–302001

डॉ. ओम महला
सह आचार्य, लोक प्रशासन
राजस्थान विश्वविद्यालय,
जयपुर–302004

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

प्राक्कथन

बीसवीं सदी भारत के महान स्वतन्त्रता संग्राम की सदी थी। राष्ट्रपिता महात्मा गांधी, पंडित जवाहरलाल नेहरू, सरदार वल्लभ भाई पटेल, बाबा साहब डॉ. भीमराव अम्बेडकर, मौलाना अबुल कलाम आजाद जैसे भारत माँ के महान सपूतों और नेताजी सुभाष चन्द्र बोस एवं भगतसिंह जैसे उत्कट देशभक्त क्रांतिकारियों ने अपने अप्रतिम योगदान से देश को आजादी दिलाई। महात्मा गांधी ने राष्ट्रीय आन्दोलन को जन सामान्य का आन्दोलन बनाकर उसे व्यापक स्वरूप प्रदान किया। आन्दोलन को सत्य, अहिंसा, स्वदेशी, सर्वोदय तथा नैतिक बल जैसे सशक्त सिद्धान्तों से शक्ति मिली। गांधीजी ने 'असहयोग', 'सविनय अवज्ञा' एवं 'भारत छोड़ो' जैसे अहिंसक आन्दोलनों से ब्रिटिश शासन की चूलें हिलाकर देश को सत्य एवं अहिंसा के बल पर बिना किसी रक्तपात के आजादी दिलाने में अहम् भूमिका निभायी। गांधीजी के इसी शस्त्र का प्रयोग कर विश्व के अधिकांश राष्ट्रों ने विदेशी शासकों से आजादी प्राप्त की। भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन की प्रमुख विशेषता यह रही है कि हमारे यहां राष्ट्रीय आन्दोलन एवं संवैधानिक विकास दोनों घटनाएँ साथ–साथ चलती हैं। इसी स्वाधीनता संग्राम के दौरान हमारे सांस्कृतिक जीवन मूल्यों, आदर्शों और सिद्धान्तों के अनुरूप देश में लोकतंत्र की स्थापना का मार्ग प्रशस्त हुआ। महान विचारकों और क्रांतिकारियों द्वारा रोपित लोकतन्त्र का वह पुष्प आज वटवृक्ष का रूप ले चुका है।

महान नेताओं की सूझबूझ और सर्व धर्म समभाव के सिद्धान्त को आत्मसात करते हुए देश में एक ऐसे संविधान का निर्माण किया गया जो इन सात दशकों में अनेक झंझावातों के बावजूद एकता और अखंडता का प्रमुख आधार स्तम्भ बना हुआ है। इसी कारण भारत विश्व के अन्य लोकतान्त्रिक देशों में पंडित नेहरु के बाद लाल बहादुर शास्त्री, इन्दिरा गांधी, राजीव गांधी ने लोकतान्त्रिक मूल्यों और सिद्धान्तों को आगे बढ़ाते हुए अपने प्राणों की आहुति देकर भी देश को विकास के पथ पर अग्रसर किया।

जवाहरलाल नेहरू आधुनिक भारत के शिल्पी थे। वे एक महान लोकतंत्रवादी थे। लोकतंत्र के विषय में नेहरू की धारणा बड़ी गतिशील तथा व्यापक थी। वे लोकतंत्र को निरन्तर विकासमान तथा गत्यात्मक मानते थे। पं. नेहरू की संसदीय लोकतंत्र में महती आस्था थी। उनके लिए लोकतंत्र एक जीवन पद्धति है तथा सोचने का ढंग है। नेहरू द्वारा प्रतिपादित लोकतांत्रिक मूल्यों को भारतीय संविधान की प्रस्तावना में देखा जा सकता है। वस्तुतः लोकतंत्र कतिपय मूल्यों, मान्यताओं तथा नैतिक मानदण्डों का पुंज है। पंथ निरपेक्षता लोकतंत्र का मेरुदण्ड है।

आधुनिक भारत के शिल्पकार के रूप में नेहरू ने त्वरित औद्योगिक, वैज्ञानिक एवं प्रौद्योगिकीय

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

विकास की सुदृढ़ बुनियाद रखी। उन्होंने भारत में स्थापित उद्योगों तथा बांधों को राष्ट्र के प्रमुख तीर्थ स्थल कहकर सम्बोधित किया। वे महिलाओं, बच्चों, दलितों, शोषितों, वंचितों, अल्पसंख्यकों, गरीबों तथा कमज़ोर वर्गों के सशक्तीकरण के प्रबल हिमायती थे।

सन् 1947 से सन् 1964 के अपने प्रधानमंत्रित्व काल में नेहरू ने लोकतांत्रिक संस्थाओं का निर्माण कर एक अभूतपूर्व युग का सूत्रपात किया। उन्होंने चुनाव–प्रक्रिया, न्यायिक स्वतंत्रता, योजनाबद्ध आर्थिक विकास और वैज्ञानिक संस्थाओं, आई.आईटी, आई.आई.एम., एम्स जैसी संस्थाओं के निर्माण का जाल फैलाकर देश में चहुँमुखी विकास का श्रीगणेश कर देश को नवनिर्माण एवं विकास के शिखर पर पहुँचाने का प्रयास किया। वैज्ञानिक प्रयोगशालाओं में हरित एवं श्वेत क्रान्तियां पैदा की तथा इसरो तथा परमाणु ऊर्जा केन्द्र की स्थापना कर एक गौरवशाली अध्याय की शुरूआत की।

भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन की वैचारिकी के जिन बुनियादी सिद्धान्तों को नेहरू के नेतृत्व में स्वतंत्र भारत के संवैधानिक लोकतंत्र के आधारभूत सैद्धान्तिक स्तम्भों के रूप में मान्यता मिली उनमें प्रमुख हैं राष्ट्रवाद, विकेंद्रीकरण, समाजवाद तथा पंथ निरपेक्षता। इनके बिना लोकतंत्र की अवधारणा अधूरी है। लोकतांत्रिक समाजवाद उनके विचार दर्शन का मूल मर्म है। लोक कल्याणकारी शासन, सामुदायिक विकास, पंचायती राज, विकेन्द्रीकरण, राष्ट्रीयकरण, नियोजित विकास तथा राष्ट्रीय विकास में निजी एवं सार्वजनिक क्षेत्रों की समान रूप से भागीदारी के साथ मिश्रित अर्थ–व्यवस्था आदि उनके आर्थिक लोकतंत्र के उपक्रम कहे जा सकते हैं।

नेहरू के लिए राष्ट्रवाद का अर्थ केवल भारत की स्वतंत्रता ही नहीं था वरन विश्व मानवता की सेवा भी था। वे उदार राष्ट्रवादी थे और एशियाई तथा अफ्रीकी जनता की राजनीतिक तथा आर्थिक स्वतंत्रता की आकांक्षा के प्रमुख वक्ता थे। इस प्रकार एक महान् राष्ट्रवादी होने के साथ–साथ नेहरु महान अन्तरराष्ट्रवादी भी थे। भारत की विदेश नीति के भी नेहरू प्रमुख शिल्पी थे। असंलग्नता एवं पंचशील उनकी भारतीय विदेश नीति की प्रमुख विशेषताएँ हैं।

इस प्रकार प्रस्तुत पुस्तक में राष्ट्रीय आन्दोलन के साथ संवैधानिक विकास की यात्रा का संक्षिप्त, सरल, सुगम एवं सुबोध विश्लेषण किया गया है जिससे विद्यार्थी उसे आसानी से हृदयंगम कर सकें। साथ ही पुस्तक में महात्मा गांधी तथा पं. नेहरू के राष्ट्रीय आंदोलन में योगदान तथा नेहरू की वैचारिक विरासत, वैज्ञानिक दृष्टिकोण तथा सुनियोजित विकास के प्रति प्रतिबद्धता को रेखांकित कर उनकी सशक्त भारत के निर्माण में भूमिका की व्याख्या की गयी है। आशा है, प्रस्तुत पुस्तक विद्यार्थी जगत के लिए स्वतंत्रता संग्राम, संवैधानिक विकास तथा राष्ट्र निर्माण एवं विकास में नेहरू की भूमिका को सम्यक प्रकार से समझने में अति सहायक सिद्ध होगी।

संयोजक

प्रोफेसर बी. एम. शर्मा

पूर्व अध्यक्ष, राजस्थान लोक सेवा आयोग, अजमेर

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

आजादी के बाद का स्वर्णिम भारत

भाग–1

विषय कोड–79
पूर्णांक–100

अध्याय–1 : औपनिवेशिक भारत–सतत शोषण का काल **11**

धन का निकास, नौरोजी के अनुसार धन निष्कासन की पद्धतियां, धन निकासी का आर्थिक प्रभाव, ब्रिटिश काल में भारतीय परम्परागत उद्योगों का पतन, ब्रिटिश काल से पूर्व भारत में विभिन्न प्रकार के उद्योग, ब्रिटिश काल में कृषि पर प्रभाव, ब्रिटिश काल में हस्तशिल्प कलाओं का पतन

अध्याय–2 : भारत का स्वतंत्रता आंदोलन **37**

राष्ट्रीय आन्दोलन–उद्भव एवं विकास के उत्तरदायी कारण, भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना से पूर्व राजनीतिक संस्थाओं का उदय, राष्ट्रीय आंदोलन के चरण–1. राष्ट्रीय आंदोलन का उदारवादी युग–कांग्रेस के प्रारम्भिक उद्देश्य, ब्रिटिश सरकार और कांग्रेस, उदारवादियों की सफलता, 2. राष्ट्रीय आंदोलन का उग्रवादी युग–क्रांतिकारी आंदोलन का प्रथम चरण, क्रान्तिकारी आन्दोलन का दूसरा चरण, 3. राष्ट्रीय आंदोलन का गाँधी युग–राष्ट्रीय आन्दोलन का आगामी घटनाक्रम, भारत छोड़ो आन्दोलन, भारत छोड़ो आंदोलन के कारण, आजाद हिंद फौज, नौसैनिकों का विद्रोह, महात्मा गाँधी के विचार

अध्याय–3 : भारत में संवैधानिक विकास की प्रक्रिया **17**

सन 1773 ई. का रेग्यूलेटिंग एक्ट, 1781 का संशोधन अधिनियम, सन 1784 का पिट्स इंडिया एक्ट, सन 1786 का संशोधन अधिनियम, सन 1793 का चार्टर एक्ट, सन 1813 ई. का चार्टर एक्ट, सन 1833 ई. का चार्टर एक्ट, सन 1853 ई. का चार्टर एक्ट, सन 1858 ई. का भारत सरकार अधिनियम, सन 1861 ई. का भारतीय परिषद अधिनियम, सन 1892 ई. का भारतीय परिषद अधिनियम, सन 1909 ई. का भारतीय परिषद अधिनियम (मॉर्ले मिन्टो सुधार), सन 1919 ई. का भारत सरकार अधिनियम (मोंटेग्यू–चेम्सफोर्ड सुधार), साइमन कमीशन 1927, सन 1935 ई. का भारत सरकार अधिनियम, भारतीय स्वतंत्रता अधिनिमय 1947, संविधान सभा का गठन, संविधान सभा के प्रमुख सदस्य : प्रमुख संविधान निर्माता, संविधान निर्माण की प्रक्रिया,

अध्याय–4 : नेहरू की वैचारिक विरासत एवं वैज्ञानिक दृष्टिकोण **17**

वैज्ञानिक दृष्टिकोण, परमाणु ऊर्जा कार्यक्रम, अंतरिक्ष अनुसंधान, लोकतंत्र सम्बन्धी विचार, नेहरु की आर्थिक दृष्टि : लोकतांत्रिक समाजवाद, पंथनिरपेक्षता सम्बंधी विचार, राष्ट्रवाद सम्बन्धी विचार, नेहरू का अन्तर्राष्ट्रीयवाद, असंलग्नता, पंचशील,

अध्याय–5 : सुनियोजित विकास एवं सशक्त भारत के निर्माण की आधारशिला : नेहरू की भूमिका **18**

आर्थिक नियोजन सम्बन्धी विचार एवं योजना आयोग का गठन, प्रथम पंचवर्षीय योजना, द्वितीय पंचवर्षीय योजना, तृतीय पंचवर्षीय योजना,

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

विषय—सूची

अध्याय –1	**औपनिवेशिक भारत – सतत शोषण का काल**	1–9
	– धन का निकास	
	– ब्रिटिश काल में कृषि पर प्रभाव	
	– ब्रिटिश काल में हस्तशिल्प कलाओं का पतन	
अध्याय –2	**भारत का स्वतन्त्रता आन्दोलन**	10–40
	– राष्ट्रीय आन्दोलन का उदारवादी चरण (सन् 1985 से 1905)	
	– राष्ट्रीय आन्दोलन का उग्रवादी चरण (सन् 1905 से 1920)	
	– राष्ट्रीय आन्दोलन का गांधी युग (सन् 1920 से 1947)	
	– महात्मा गांधी के विचार	
	ईश्वर, सत्य एवं अहिंसा, स्वदेशी, सर्वोदय, चरखा, ट्रस्टीशिप, सत्याग्रह एवं शासन का विकेन्द्रीकरण	
अध्याय –3	**भारत में संवैधानिक विकास की प्रक्रिया**	41–54
	– संवैधानिक विकास	
	– संविधान निर्माण की प्रक्रिया	
अध्याय –4	**नेहरू की वैचारिक विरासत एवं वैज्ञानिक दृष्टिकोण**	55–68
	– वैज्ञानिक दृष्टिकोण, परमाणु ऊर्जा कार्यक्रम, अन्तरिक्ष अनुसंधान	
	– लोकतन्त्र संबंधी विचार	
	– लोकतान्त्रिक समाजवाद	
	– पंथ निरपेक्षता संबंधी विचार	
	– राष्ट्रवाद संबंधी विचार	
	– नेहरू का अन्तर्राष्ट्रीयवाद	
	– असंलग्नता	
अध्याय–5	**सुनियोजित विकास एवं सशक्त भारत के निर्माण की आधारशिला : नेहरू की भूमिका**	69–83
	– आर्थिक नियोजन संबंधी विचार एवं योजना आयोग का गठन	
	– प्रथम पंचवर्षीय योजना (सन 1951 से 1956)	
	– द्वितीय पंचवर्षीय योजना (सन 1956 से 1961)	
	– तृतीय पंचवर्षीय योजना (सन 1961 से 1966)	
	संदर्भ ग्रंथ सूची	84

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

अध्याय–1

औपनिवेशिक भारत – सतत शोषण का काल

अंग्रेजों के आगमन से पूर्व भारत पर कई बार विदेशी आक्रमण हुए और उन आक्रमणों के फलस्वरूप भारत में राजनीतिक परिवर्तन तो हुए परन्तु भारत के आर्थिक ढाँचे पर आक्रमणों का कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ा। आत्मनिर्भर भारतीय गांव, ग्रामीण उद्योग एवं परस्पर अन्तरनिर्भर ग्रामीण अर्थव्यवस्था यह सब कई शताब्दियों से यहाँ चल रहे थे। भारत की आत्मनिर्भर समाज व्यवस्था का वर्णन चार्ल्स मेटकाफ इन शब्दों में करते हैं ''ग्राम व्यवस्था छोटे–छोटे गणतंत्र हैं। अपनी जरूरत की सारी चीजें इन्हें अपने यहाँ प्राप्त हैं और विदेशी संबधों से मुक्त है। जहां कुछ भी स्थायी नहीं है वहाँ ये अकेले जैसे अमर हैं। राजकुल लुढ़कते रहे, क्रान्तियां होती रहीं, हिन्दू, पठान, मुगल, मराठा, सिख, क्रमशः मालिक बनते रहे, लेकिन ग्राम–समाज यथापूर्वक बने रहे।''

भारत पर अंग्रेजों की विजय इन आक्रमणों से भिन्न थी। यह विजय उस राष्ट्र द्वारा की गयी थी जिसने अपने देश में जागीरदारी प्रथा को समाप्त किया था तथा एक आधुनिक मध्यम वर्ग समाज का निर्माण किया था। पूँजीवादी व्यवस्था की उन्नति और फैलाव के द्वारा ब्रिटेन ने अपने आप को एक आधुनिक राष्ट्र के रूप में संगठित कर लिया था। परन्तु भारतीय समाज के पुरातन आर्थिक आधार को नष्ट करके उसकी जगह पूँजीवादी व्यवस्था की स्थापना किए बिना ब्रिटेन अपनी पूँजीवादी आर्थिक आवश्यकताओं के लिए औपनिवेशिक भारत का समुचित उपयोग नहीं कर सकता था। भारत पर अंग्रेजों के राजनीतिक प्रभुत्व के विस्तार की दिशा में उठाया गया प्रत्येक कदम पुरानी अर्थव्यवस्था के लिए विघटन और नए उन आर्थिक रूपों के उदय की दिशा में ही अगला कदम था। ये सभी कदम भारतीयों के लाभ के लिए नहीं वरन ब्रिटिश लाभ के लिए प्रतिपादित किये गये थे।

वस्तुतः 16 वीं शताब्दी में भारत धन, वैभव एवं समृद्धि से सम्पन्न था। भारत की इस समृद्धि से प्रभावित होकर यूरोप के विभिन्न देश भारत के साथ व्यापार करने के लिए उत्सुक थे। सन 1600 ई0 को ब्रिटिश महारानी एलिजाबेथ प्रथम ने अंग्रेज व्यापारियों की ईस्ट इंडिया कम्पनी को भारत से व्यापार करने के लिए अधिकार पत्र दिया। 1600 ई0 में डच ईस्ट इंडिया कम्पनी भारत आई। सन 1664 ई0 में फ्रांस के सम्राट ने भारत से व्यापार करने लिए फ्रेंच ईस्ट इंडिया कम्पनी की स्थापना की। इस प्रकार अब पुर्तगाली, डच, ब्रिटिश और फ्रांसीसी कम्पनियाँ पूर्वी देशों और विशेष रूप से भारत में अपना व्यापार बढ़ाने लगीं। कुछ समय तक तो इन व्यापारी कम्पनियों का उद्देश्य भारत से व्यापार करना ही रहा, परन्तु उन्होंने भारत की राजनीतिक फूट और अस्थिरता का लाभ उठाकर अपना राजनीतिक प्रभाव बढ़ाना प्रारम्भ कर दिया। सन 1757 ई0 के प्लासी के युद्ध में अंग्रेजों की विजय ने भारत में अंग्रेजी साम्राज्य की स्थापना का मार्ग प्रशस्त कर दिया। सन 1764 ई0 के बक्सर के युद्ध में ईस्ट इंडिया कम्पनी की सेनाओं ने मुगल सम्राट शाह आलम, बंगाल के नवाब मीर

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

कासिम तथा अवध के नवाब शुजाउद्दौला की संयुक्त सेनाओं को पराजित करके ईस्ट इंडिया कम्पनी की राजनीतिक शक्ति को स्थापित कर दिया। गर्वनर जनरल लॉर्ड डलहौजी के कार्यकाल तक कम्पनी की प्रभुसत्ता सम्पूर्ण भारत में स्थापित हो चुकी थी और अब मुगल बादशाह की सत्ता केवल नाम मात्र की रह गई थी। तत्पश्चात आगामी वर्षों में अंग्रेजों ने भारत में अपने साम्राज्य का विस्तार किया।

19 वीं शताब्दी के प्रारम्भ तक अंग्रेजों ने इस देश के व्यापार को अपने कब्जे में ले लिया। इस अवधि में वे भारत से माल ले जाते और विदेशों में बेच देते। ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कम्पनी के कर्मचारी, किसान एवं व्यापारियों से बलपूर्वक उनका माल उठा ले जाते थे। वे लागत मूल्य का केवल एक चौथाई मूल्य चुकाते थे जबकि अपने या अपने अधिकार में लिये माल को कई गुना कीमत में बेचते थे। अंग्रेज मनमाने ढंग से स्वयं यह निर्धारित करते थे कि प्रत्येक कारीगर किस प्रकार का माल तैयार करेगा और कितनी कीमत पर बेचेगा। यदि कारीगर कम दाम लेने को तैयार नहीं होता था, तो उसे बांध कर और कोड़े मारकर भगा दिया जाता था। यह व्यापारिक पूँजी का काल था।

इंग्लैण्ड में औद्योगिक क्रांति के फलस्वरूप भारत को ब्रिटिश कारखानों के लिए कच्चे माल का निर्यातक देश बना दिया गया एवं वहाँ के कारखानों में निर्मित माल को भारत की मंडियों में खपाया जाने लगा। औद्योगिक पूँजी के इस दौर में भारत में निर्मित वस्तुओं पर ब्रिटेन में भारी चुंगी वसूली जाती थी जबकि ब्रिटिश माल जब भारत आता तो उस पर कोई चुँगी नहीं ली जाती थी। परिणामस्वरूप भारतीय उद्योग–धंधे एक योजना के तहत नष्ट कर दिये गये। अब भारत ब्रिटिश माल पर निर्भर हो गया। लोहा गलाने के देशी उद्योग नष्ट कर दिए गए तथा उनके स्थान पर सस्ता आयातित लोहा व इस्पात बाजार में आने लगा। भारत को इंग्लैण्ड का एक उपनिवेश बना दिया गया।

भारत का आर्थिक शोषण जितना अधिक ब्रिटिश शासन काल में हुआ उतना मध्य काल में नहीं हुआ। आर्थिक दृष्टि से दोनों शासनकालों में कुछ भिन्नताएँ थीं। अधिकांश मध्यकालीन शासकों का जन्म भारत में हुआ और वे यहाँ के निवासी थे लेकिन ब्रिटिश शासक विदेशी थे और विदेशी ही बने रहे। मध्यकालीन शासकों द्वारा अर्जित धन देश में ही निवेश किया गया लेकिन अंग्रेजों ने अपने अर्जित धन को अपने देश इंग्लैण्ड में निवेश किया। आर.सी. दत्त ने अपनी पुस्तक भारत का आर्थिक इतिहास में धन निकास के बारे में उल्लेख किया है कि राजा द्वारा अपनी जनता से अधिक कर ग्रहण करना .सूरज द्वारा पृथ्वी से उस पानी प्राप्त करने के समान होता है जो वर्षा के रूप में पुनः भूमि को देता है। परन्तु यहाँ तो सूरज पानी भारत से ग्रहण करता है तथा वर्षा केवल इंग्लैण्ड में करता है। भारत जो मध्यकाल में एक समृद्ध राष्ट्र था उसे ब्रिटिश युग में एक निर्धन राष्ट्र बना दिया गया। यह सत्य है कि मध्य काल में कुछ विदेशी आक्रमणकारियों ने जैसे महमूद गजनवी, तैमूर और नादिरशाह आदि भारत से धन सम्पदा लूटकर ले गये परन्तु देशवासियों ने उनके जाने के बाद अपने परिश्रम और लगन से देश की आर्थिक स्थिति को ठीक कर लिया था। लेकिन ब्रिटिश शासकों ने ऐसी आर्थिक नीतियाँ अपनायी जिससे भारतीय अर्थव्यवस्था दिनों–दिन जर्जर होती चली गयी।

प्राकृतिक संसाधनों से समृद्ध भारत को अंग्रेजों ने अपनी औद्योगिक विकास की पूर्ति के लिए हर प्रकार से लूटा। बंगाल में दीवानी प्राप्त करने से पूर्व ईस्ट इंडिया कंपनी का व्यापार एकतरफा था। भारत को बेचने के लिए इंग्लैण्ड के पास कुछ नहीं था जबकि भारतीय वस्तुओं की उसे आवश्यकता थी जिसका व्यापार कंपनी के लिए बहुत ही लाभदायक था। इंग्लैण्ड का ऊनी उद्योग काफी विकसित था पर भारत में ऊनी कपड़े की माँग न थी। इसलिए भारतीय वस्तुओं की आपूर्ति करने के लिए कंपनी को इंग्लैण्ड से सोना–चांदी जैसी बहुमूल्य धातुएँ भारत लानी पड़ती थी। पहले इन धातुओं का इंग्लैण्ड के कुल निर्यात में बहुत अधिक हिस्सा था परन्तु सन 1757 ई. के बाद यह तेजी से घटने लगा क्योंकि कंपनी का बंगाल के राजस्व पर नियंत्रण हो

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

गया था। यहाँ से भारत की लूट प्रारम्भ हुई जो सन 1947 ई. तक निरन्तर चलती रही।

धन का निकास– सन 1757 ई. के प्लासी के युद्ध के पश्चात भारत से धन निष्कासन की शुरूआत हुई। धन निष्कासन का तात्पर्य ऐसे धन से है जो भारत से इंग्लैण्ड को वेतन, भत्तों, पेंशन, कर्जों पर ब्याज, भारत में लगी ब्रिटिश पूँजी की कमाई के रूप में इंग्लैण्ड भेजा जाता था और इसके बदले में भारत को कोई आर्थिक तथा व्यापारिक प्रतिफल प्राप्त नहीं हो रहा था। ऐसे धन को तत्कालीन भारतीय राष्ट्रीय नेताओं ने धन की निकासी कहा। वाणिज्यवाद विचारधारा के अनुसार आर्थिक निकास उस समय होता है जब किसी देश से प्रतिकूल व्यापार संतुलन के फलस्वरूप सोना और चांदी का निकास किसी दूसरे देश में होता है। प्लासी के युद्ध के बाद भारत की यही स्थिति बन गई। इंग्लैण्ड का भारतीय अर्थव्यवस्था पर एकाधिकार हो गया तथा भारतीय धन का इंग्लैण्ड की ओर अविरल प्रवाह होने लगा।

सर्वप्रथम दादा भाई नौराजी ने अपनी पुस्तक ***पावर्टी एण्ड अन ब्रिटिश रूल इन इण्डिया में धन निष्कासन के सिद्धान्त* (Drain of Wealth) *का प्रतिपादन किया।*** दादा भाई नौरोजी ने यह स्पष्ट किया कि तत्कालीन भारतीय गरीबी का प्रमुख कारण धन निष्कासन है क्योंकि जो अधिशेष होता है वह इंग्लैण्ड में भेज दिया जाता है। इसे भारत में निवेश नहीं किया जाता। आय का अतिरिक्त भाग जो अधिक उत्पादन के लिए लगाया जाता है वही नए रोजगार पैदा करता है। परन्तु अतिरिक्त आय की लगातार निकासी के कारण भारत में रोजगार सृजन नहीं हो रहा है। उन्होंने कहा कि भारतीय धन और पूँजी का एक बड़ा भाग या तो देश के बाहर भेज दिया जाता है अथवा उसका एक पक्षीय ढंग से कर्जों के ब्याज, भारत में लगी ब्रिटिश पूँजी की कमाई और यहाँ पर सेवा करने वाले सैनिक या नागरिक अधिकारियों के वेतन और पेंशन के रूप में निर्यात कर दिया जाता है। उन दिनों यह दावा किया जाता था कि ब्रिटिश शासन ने भारत को जान–माल की सुरक्षा का लाभ दिया। इस दावे पर भी आपत्ति करते हुए दादाभाई नौरोजी ने लिखा :–

''कल्पना यह है कि भारत में जान और माल की सुरक्षा है लेकिन वास्तविकता यह है कि ऐसी कोई चीज नहीं है। जान और माल की सुरक्षा एक अर्थ में या एक तरह से यों कहें कि लोग आपस की या देशी निरंकुश राजाओं की हिंसा से सुरक्षित है, लेकिन इंग्लैड की जकड़न कुछ ऐसी है कि संपत्ति की सुरक्षा बिल्कुल नहीं है और परिणामस्वरूप जान की सुरक्षा भी नहीं है। भारत की संपत्ति सुरक्षित नहीं है। उसकी संपति को, आजकल की दर से 3 या 4 करोड़ पौंड सालाना हजम कर रहा है। अतः मैं विनम्रता के साथ यह कहने का साहस करता हूँ कि भारत जान और माल की सुरक्षा का सुख नहीं भोग रहा है। भारत में लाखों लोगों के लिए जीवन का अर्थ है आधा पेट भोजन, भुखमरी, अकाल और बीमारी।''

यही सिद्धान्त आगे चलकर राष्ट्रीय आंदोलन में जन जाग्रति का कारण बना। नौरोजी के अनुसार सन 1867–68 ई. में भारत की प्रतिव्यक्ति आय 20 रू थी जबकि जीवन निर्वाह हेतु न्यूनतम 34 रू वार्षिक की आवश्यकता थी। आश्चर्य की बात यह थी कि सरकारी आँकड़े बताते हैं कि सन 1867–68 ई. में भारत की काराग्रहों में बन्द कैदियों पर किया गया व्यय 21 रू से लेकर 53 रूपये तक था। अतः इससे स्पष्ट होता है कि भारत के आम आदमी के जीवन निर्वाह की स्थिति ब्रिटिश काल में विकट थी।

नौरोजी के अनुसार धन निष्कासन की निम्नलिखित पद्धतियां थीं :–

1. गृह व्यय– गृह व्यय में उन व्ययों को शामिल किया जाता था जो भारत सचिव तथा उससे सम्बद्ध व्यय होते थे। इसमें ईस्ट इण्डिया कम्पनी के भागीदारों का लाभांश, विदेशों में लिये गये सार्वजनिक ऋण, सैनिक और असैनिक व्यय तथा इंग्लैण्ड में भण्डार की खरीद सम्मिलित थे। यह व्यय सन 1857 ई0 के उपरान्त बहुत अधिक बढ़ गया था। सन 1897–01 ई0 के बीच 24 प्रतिशत हो गया था तथा सन 1920–21 ई0 में यह और अधिक बढ़कर केन्द्र सरकार के समस्त राजस्व का 40 प्रतिशत हो गया था।

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

2. विदेशी पूँजी निवेश पर दिया जाने वाला ब्याज— भारतीय राष्ट्रीय आय से यह एक दूसरा महत्त्वपूर्ण धन का निकास था। इसके तहत व्यक्तिगत विदेशी पूँजी निवेश पर ब्याज और लाभ लिया जाता था। सन 1900 ई0 के बाद भारत में ब्रिटिश लोगों ने निजी क्षेत्र में बहुत पूँजी का विनिवेश किया। इस पूँजी पर उन्हे ब्याज तथा लाभ प्राप्त होता है। यह धन निकासी का दूसरा महत्वपूर्ण स्रोत था।

3. विदेशी बैंक, बीमा, एवं नौवहन कम्पनियाँ— विदेशी बैंक, बीमा, नौवहन कम्पनियों ने भारत से करोड़ों रूपयों का लाभ कमाया। इन कम्पनियों ने भारतीय देशी कम्पनियों को देश में नहीं पनपने दिया तथा इन्होंने अपने लाभ को भारत में निवेश न करके अपने देश इंग्लैण्ड में निवेश किया। यह धन निकासी का तीसरा महत्त्वपूर्ण स्रोत था।

भारत से आर्थिक निकासी

वर्ष	वार्षिक औसत (लाख पौंड में)
1835–39	53.47
1840–44	59.30
1845–49	77.60
1850–54	74.58
1855–59	77.30
1860–64	173.00
1865–69	246.00
1870–72	274.00

''हमारी प्रणाली एक ऐसे स्पन्ज के रूप में काम करती है जो गंगा के किनारों से प्रत्येक अच्छी वस्तु ले लेती है फिर टेम्स के किनारे पर निचोड़ देती है''– जॉन सुलिवन

धन निकासी का आर्थिक प्रभाव— नौरोजी ने धन निकासी को **'अनिष्टों का अनिष्ट'** संज्ञा दी तथा इसे भारत की गरीबी का मुख्य कारण बताया। उन्होंने कहा इस धन के निकास के कारण देश में पूँजी संगठित नहीं हो रही है जिससे देश के औद्योगिक विकास की गति बहुत धीमी हो गई है। भारतीय धन के ब्रिटेन में जाने से इंग्लैण्ड में औद्योगिक विकास के साधन और गति बढ़ गई है। इसका दूसरा घिनौना पक्ष यह भी है कि यही धन पुनः भारत में पूँजी के रूप में निवेश कर दिया जाता था और इस प्रकार भारत का शोषण निरन्तर बढ़ता जा रहा था। नौरोजी ने एक बार कहा था कि भारत का धन बाहर जाता है फिर वही धन भारत में ऋण के रूप में वापस आ जाता है और इस ऋण के लिए और अधिक ब्याज। एक प्रकार यह ऋण एक दुष्चक्र सा बन गया है। यही दुष्चक्र भारत की गरीबी का कारण है। इस धन निकास से भारत में रोजगार तथा आय की सम्भावनाओं पर अत्यधिक प्रतिकूल प्रभाव पड़ा है। अतः भारत में इस धन निकासी के कारण गरीबी एवं बेरोजगारी बढ़ती जा रही थी।

ब्रिटिश काल में भारतीय परम्परागत उद्योगों का पतन— भारत में अंग्रेजी शासन के आगमन से पूर्व शहरों में दस्तकारी का कार्य बहुत कुशलता तथा कलात्मकता से होता था। कलवर्टन लिखते हैं, ''प्राचीन काल में जब रोम के निजी एवं सार्वजनिक भवनों में भारतीय कपड़ों, दीवार–दरी तामचीनी, मोजेक, हीरे जवाहरात आदि का उपयोग होता था उस वक्त से लेकर औद्योगिक क्रांन्ति के प्रारम्भ तक आकर्षक तथा सुन्दर वस्तुओं के लिए सारा संसार भारत का मोहताज रहा है।'' सन 1800 ई. तक भारतीय उद्योग–धन्धे

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

संसार में सबसे अधिक विकसित अवस्था में थे क्योंकि अभी उद्योग केवल कुटीर उद्योग ही थे और भारतीय कपड़ा अपनी सुन्दरता व महीनता के लिए विश्व प्रसिद्ध था। ढाका की मलमल की पूरे विश्व में मांग थी। तेरहवीं, चौदहवीं और पन्द्रहवीं शताब्दियों में धातुकर्म, प्रस्तर शिल्प, नील, कागज, रंगाई, शीशे की चीजों का निर्माण, मनका, बेश कीमती पत्थरों पर की गई कारीगरी, सोने के तारों तथा कसीदाकारी जैसे अनेक कार्य विकास के चरम पर थे। लेकिन सन 1800 ई0 के बाद देश में एक आश्चर्यजनक परिवर्तन हुआ। औद्योगिक क्रान्ति के फलस्वरूप विदेशों के आधुनिक कारखानों में उत्पादन अत्यधिक बढ़ने लगा। इंग्लैण्ड की औद्योगिक क्रांति के कारण भारत में इंग्लैण्ड के कारखानों में बने माल की बाढ़ आ गई जिससे न केवल देशी कुटीर उद्योगों का पतन होने लगा बल्कि उनके देशी व विदेशी बाजार में गिरावट आ गई। इस घटना को इतिहास में अनौद्योगीकरण कहा जाता है जिससे भारतीय परम्परागत उद्योगों का पतन हो गया तथा भारतीय अर्थव्यवस्था पर इंग्लैण्ड का नियन्त्रण सुदृढ़ होता गया।

ब्रिटिश काल से पूर्व भारत में विभिन्न प्रकार के उद्योग–धन्धे फल फूल रहे थे जैसे ग्रामीण उद्योग, कृषि आधारित उद्योग, कलात्मक ग्रामीण उद्योग एवं नगरीय कुटीर उद्योग आदि। ईस्ट इण्डिया कम्पनी का एक मात्र उद्देश्य भारत से कच्चे माल का इंग्लैण्ड में निर्यात करना तथा ब्रिटेन के कारखानों में निर्मित माल को भारतीय बाजारों में बेचकर अधिकाधिक लाभ कमाना था। कम्पनी जब यहाँ आई तो भारत में निर्मित कपड़ा व अन्य माल बेचने से इंग्लैण्ड में निर्मित कपड़े की ब्रिकी अत्यधिक कम हो गयी। परिणामस्वरूप इंग्लैण्ड की कम्पनियों ने भारत से कपड़ा मंगाने का विरोध किया। अतः सन 1700 ई0 में कानून बनाया गया जिसके द्वारा इंग्लैण्ड में विदेशों से आने वाले कपड़े पर रोक लगाई गई जिससे भारतीय निर्यात पर गहरा प्रभाव पड़ा। व्यापार संतुलन इंग्लैण्ड के पक्ष में होता चला गया। भारतीय उद्योगों को इससे हानि हुई। ब्रिटिश सरकार ने विभिन्न भेदभावपूर्ण कानूनों एवं नीतियों से ऐसी व्यवस्था बना ली जिससे भारतीय कच्चा माल सस्ती दरों पर इंग्लैण्ड को निर्यात किया जाये तथा वहाँ के कारखानों में निर्मित माल आयात कर भारतीय बाजारों में महंगी दरों पर बेचा जाये। इसका एक उदाहरण है कपास, बुनकर अपने कपड़े के लिए कपास सूरत और बम्बई से लेते थे। इस कच्चे माल पर अपना नियंत्रण रखने के लिए कम्पनी के कर्मचारियों ने एक कम्पनी खोल ली और सूरत से 25 लाख रूपये में सारी कपास खरीद ली। इसके परिणामस्वरूप कपास की कीमत 16–18 रूपये प्रति मन से बढ़कर 20–30 रूपये प्रति मन हो गई। यह बुनकरों के लिए अत्यन्त घातक सिद्ध हुआ जिससे एक ओर तो वे अपने द्वारा तैयार माल को अपनी इच्छा से बेचने के लिए स्वतंत्र नहीं थे, वहीं दूसरी ओर कच्चे माल के ऊँचे दामों ने उनकी कमर तोड़ दी। इस शोषणकारी प्रक्रिया ने भारतीय परम्परागत उद्योगों को समाप्त कर दिया तथा बेरोजगार भारतीय जनता को निर्धनता की तरफ धकेल दिया तथा इस अनौद्योगीकरण के कारण भारतीय जनता की कृषि पर निर्भरता निरन्तर बढ़ती चली गयी।

ब्रिटिश काल में कृषि पर प्रभाव– ब्रिटिश काल में कृषि का इतिहास कृषकों की निरन्तर निर्धनता का इतिहास है। ये कृषकों के कर्ज के दुष्चक्र का इतिहास है। ब्रिटिश काल में भारतीय परम्परागत उद्योग धन्धों के पतन के कारण कृषिगत भूमि पर जनसंख्या का भार बढ़ गया जिसके परिणामस्वरूप खेतों का आकार छोटा होता गया तथा कृषि एक लाभप्रद रोजगार नहीं रही। ईस्ट इण्डिया कम्पनी द्वारा नियमित राजस्व की वसूली के लिए नयी भू–राजस्व व्यवस्थाओं को लागू किया गया। सन 1765 ई0 में कम्पनी को बंगाल, बिहार व उड़ीसा की दीवानी मिलते ही भू–राजस्व वसूलने के लिए स्वयं के लाभ के लिए एक नया ढाँचा खड़ा करना था। साम्राज्य विस्तार के लिए अधिक धन की आवश्यकता थी। इसलिए सर्वप्रथम बंगाल में लगान में वृद्धि की गई। इसे भी नाकाफी मानते हुए भारतीय कृषि को पूँजीवादी व्यवस्था के अनुरूप ढालने के

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

लिए भारतीय परम्परागत ढाँचों से अलग कुछ नए उपाय खोजे गये।

बंगाल के प्रथम गवर्नर जनरल वारेन हेस्टिंग्स के समय ही लगान वसूल करने से सम्बन्धित कई प्रश्न उत्पन्न हुए जैसे –

1. भारत में भूस्वामी किसे माना जाए ?

2. राजस्व चुकाने के लिए उत्तरदायी कौन हो ?

3. उपज में सरकार का भाग कितना हो ?

वारेन हेस्टिंग्स का मानना था कि भूमि राजा की है तथा लगान इकट्ठा करने वाले मात्र कम्पनी के एजेण्ट हैं अर्थात् कोई अधिक बोली लगाने वाला भी लगान वसूलने का अधिकारी हो सकता था। इस व्यवस्था ने 'अनुपस्थित जमींदारों' को जन्म दिया। इससे पुराने जमींदार परिवार नष्ट हो गए तथा उनके और खेती करने वालों के परम्परागत भावनात्मक सम्बन्ध समाप्त हो गए। परिणामस्वरूप भारतीय कृषि पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा।

वारेन हेस्टिंग्स के बाद ब्रिटिश शासन काल में अपने राजस्व की बढ़ोतरी के लिए मुख्य रूप से तीन नयी भू–राजस्व व्यवस्थाओं को लागू किया गया–

1. स्थायी बंदोबस्त अथवा जमींदारी व्यवस्था– इस भू–राजस्व व्यवस्था को लॉर्ड कॉर्नवॉलिस ने लागू किया। यह भू–राजस्व व्यवस्था बंगाल, बिहार, उड़ीसा, बनारस खण्ड तथा उत्तरी कर्नाटक में लागू की गयी। स्थायी बंदोबस्त में जमींदार को भूमि का स्वामी स्वीकार किया गया। वह भूमि को बेच सकता था अथवा दान दे सकता था तथा राज्य को भूमि कर देने के लिए केवल जमींदार ही उत्तरदायी था। उसके कर न देने पर उसकी भूमि को जब्त कर लिया जाता था। इस व्यवस्था में भू–राजस्व को स्थायी रूप से निश्चित कर दिया गया था जिसकी वसूली कम्पनी जमींदार से करती थी। इस कारण इस व्यवस्था को स्थायी जमींदारी व्यवस्था भी कहा जाता है। यह व्यवस्था ब्रिटिश भारत के 19 प्रतिशत भाग पर लागू थी। इस व्यवस्था में जमींदार का हिस्सा भू–राजस्व का 11 प्रतिशत तथा कम्पनी का 89 प्रतिशत था। प्रारम्भिक वर्षों में इतनी ऊँची राजस्व की मांग के कारण 1/3 से अधिक जमींदार बेदखल हो गए किन्तु कालान्तर में अनेक तत्वों के कारण स्थितियाँ जमींदारों के पक्ष में हो गईं। इस व्यवस्था का सबसे नकारात्मक पक्ष यह था कि सरकार की मांग स्थिर हो गयी जबकि जमींदार किसानों से अधिक भू–राजस्व वसूलता था और यदि भू–राजस्व का भुगतान किसान/काश्तकार नहीं करता था तो उसे जमीन से बेदखल कर दिया जाता था।

2. महलवाडी पद्धति– यह भू–राजस्व व्यवस्था ब्रिटिश भारत के 30 प्रतिशत भू–भाग पर लागू थी। इस भू–राजस्व व्यवस्था में भूमि कर की इकाई कृषक के खेत को नहीं मानकर ग्राम अथवा महल को माना गया था। इस व्यवस्था में भूमि सामूहिक रूप से समस्त ग्राम सभा की होती थी जिसे भागीदारों का समूह कहा जाता था। ये लोग सामूहिक रूप से भू–राजस्व देने के लिए उत्तरदायी होते थे। यदि कोई व्यक्ति भूमि छोड़ देता था तो ग्राम सभा इस भूमि को सम्भाल लेती थी। यह भू–राजस्व व्यवस्था अवध (यू.पी.), मध्य प्रांत तथा पंजाब में (कुछ परिवर्तन के साथ) लागू की गई थी।

इस भू–राजस्व व्यवस्था में कर की वास्तविक दर के स्थान पर संभावित दर पर कर लिया जाने लगा जिसके कारण कृषकों की स्थिति और अधिक खराब हो गई और इस कारण इस क्षेत्र के लोगों ने सन 1857 ई0 के विद्रोह में भाग लिया।

3. रैयत वाड़ी भू–राजस्व व्यवस्था– यह भू–राजस्व व्यवस्था ब्रिटिश भारत के 51 प्रतिशत भाग पर लागू थी। इस भू–राजस्व व्यवस्था में रैयत (किसान) को भूमि का स्वामी स्वीकार किया गया। किसान राज्य

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

सरकार को भूमि कर देने के लिए उत्तरदायी था वह अपनी भूमि को बेचने, गिरवी रखने का अधिकारी था। वह अपनी भूमि से उस समय तक वंचित नहीं किया जा सकता था जब तक वह समय पर भूमि कर देता रहे।

इस व्यवस्था को मद्रास प्रेजीडेन्सी के बारामहल जिले में सन 1792 ई0 में कैप्टिन रीड ने टॉमस मुनरो की सहायता से लागू किया गया। इस व्यवस्था को बम्बई में ई. गोल्डस्मिथ, कैप्टिन डेविडसन तथा कैप्टिन विगनेट के भू सर्वेक्षण के बाद लागू किया गया था। रैयत वाड़ी व्यवस्था में अत्यधिक भूमि कर एवं उसकी अनिश्चितता मुख्य समस्या थी जिसके कारण किसान दिनों–दिन साहूकारों के चंगुल में फँसते चले गये। इसी के परिणामस्वरूप सन 1875 ई. में दक्कन में कृषक विद्रोह हुआ।

इन भू–राजस्व व्यवस्थाओं के कारण निम्न दुष्परिणाम सामने आए :–

1. कृषि का व्यावसायीकरण– 1900 ई0 के बाद भारतीय कृषि में एक और परिवर्तन हुआ, वह था कृषि का व्यावसायीकरण। इस समय तक कृषि एक जीवन यापन का माध्यम थी, न कि व्यापारिक उद्देश्य। लेकिन अब कृषि पर व्यापारिक प्रभाव आने लगा। कुछ विशेष फसलों का उत्पादन ग्रामीण एवं आमजन के उपभोग के लिए नहीं अपितु राष्ट्रीय या अन्तर्राष्ट्रीय मण्डियों के लिए होने लगा। चाय, रबड़, कपास, पटसन, मूँगफली, गन्ना, तम्बाकू जैसी व्यावसायिक फसलें अब अनाज के स्थान पर अधिक लाभदायक सिद्ध होने लगी। व्यावसायिक कृषि में भूमिकर अत्यधिक होने के कारण कृषक प्रायः भूमिकर नहीं दे पाता था और उसे साहूकारों का सहारा लेना पड़ता था। इसके परिणामस्वरूप उन्हें अत्यधिक ब्याज देना पड़ता था। अतः कृषि का व्यावसायीकरण भारतीय किसान के लिए एक ऋण का दुष्चक्र साबित हुआ। इस व्यवस्था से अनेक बिचौलिये पनप गये जिससे किसान और अधिक गरीब होता चला गया।

2. निर्धनता में वृद्धि – भूमि लगान में लगातार वृद्धि और फसल की सही कीमत नहीं मिलने से भारतीय किसान की आर्थिक स्थिति ब्रिटिश काल में खराब होती चली गयी। साथ ही ब्रिटिश काल में अकाल, बाढ़, भूकम्प तथा अन्य प्राकृतिक आपदाओं के कारण किसानों की स्थिति और बदतर होती चली गयी।

3. ग्रामीण ऋण बोझ में वृद्धि – अधिकांश कृषक अत्यधिक लगान के कारण महाजनों एवं साहूकारों से ऋण लेते थे तथा इसी वजह से ऋण के जाल में फँसते चले जाते थे। ब्रिटिश काल में भारतीय कृषकों के लिए साहूकारों का ऋण एक बहुत बड़ी समस्या बन गया था। मैकलेगन ने इस कर्ज को लगभग 300 करोड़ रूपये अनुमानित किया था।

4. तीनों भू–राजस्व व्यवस्थाओं में किसान को वास्तविक रूप से भूमि का मालिक नहीं माना गया। रैयतवाड़ी व्यवस्था में यद्यपि उसे भूमि का मालिक माना गया था लेकिन भू लगान अत्यधिक होने के कारण उसकी भूमि गैर कृषकों के पास स्थानान्तरित होने लगी इसके कारण से ब्रिटिश काल में भूमि का मालिकाना हक कृषक से गैर कृषकों को स्थानान्तरित हो गया।

5. भूमि के लगान को स्थिर मूल्यों पर लागू कर यह तय कर दिया गया कि चाहे पैदावार हो या न हो जो भूमि लगान तय कर दिया गया था वह उसे देना ही होगा। भारत में जहाँ अधिकतर कृषि क्षेत्र मानसून पर आधारित है, जिससे कृषि उत्पादन निश्चित नहीं होता था। अतः लगान की अनिवार्यता ने भारतीय कृषकों को निर्धनता व कर्ज के जाल में फँसा दिया।

6. ब्रिटिश सरकार की शोषणकारी नीतियों के परिणामस्वरूप अकाल का प्रकोप बढ़ गया था। सन 1765 से सन 1855 तक भारत में कुल बारह अकाल पड़े। दुर्भाग्यवश खाद्यान्न का अभाव प्राकृतिक आपदा मात्र नहीं था बल्कि ब्रिटिश शासकों की दोषपूर्ण वितरण व विपणन नीतियों का दुष्परिणाम था। रजनीपाम दत्त ने यहाँ तक प्रमाण दिये हैं कि अकाल के दिनों में भी खाद्यान्न का निर्यात किया जाता रहा था। बार–बार

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

के अकालों ने मानव मृत्यु दर में तो वृद्धि की ही साथ ही पशु सम्पति को भी चारे की कमी ने काफी नुकसान पहुँचाया। इस प्रकार मानव संसाधनों तथा पशु सम्पत्ति पर अकाल का बहुत विपरीत प्रभाव पड़ा।

ब्रिटिश काल में हस्तशिल्प कलाओं का पतन— 19वीं सदी के दौरान भारतीय हस्तकला एवं शिल्प उद्योग का बहुत तेजी से पतन हुआ। इसका प्रमुख कारण भारत में मुक्त ब्रिटिश व्यापार का प्रारम्भ होना था। इसके कारण ब्रिटेन से सस्ती औद्योगिक वस्तुओं का भारत में आयात बढ़ गया। इसके साथ ही भारत में निर्मित वस्तुओं पर ब्रिटेन में भारी आयात शुल्क लगाया गया जिससे भारतीय वस्तुएँ इंग्लैण्ड में मंहगी हो गयीं तथा कारखानों में निर्मित वस्तुओं से प्रतिस्पर्द्धा में नहीं टिक पाईं। भारत में हस्तशिल्पकारों का संरक्षण देशी राजाओं, जमींदारों तथा सांमतों द्वारा किया जा रहा था क्योंकि यही वर्ग इनके द्वारा निर्मित वस्तुओं का उपभोक्ता था। जैसे—जैसे ब्रिटिश शासन का भारत में विस्तार हुआ, वैसे—वैसे यह वर्ग समाप्त होता चला गया अतः हस्तशिल्पकारों को संरक्षण तथा उनके द्वारा निर्मित वस्तुओं का बाजार समाप्त हो गया। इस स्थिति में शिल्पियों, कारीगरों, बुनकरों तथा अन्य हस्तशिल्प में संलग्न लोगों के सामने खेती करने के सिवाय कोई विकल्प नहीं रहा। भारत में कृषि तथा उद्योग का जो संतुलन था वह नष्ट हो गया। सन 1892 ई0 से सन 1921 ई0 तक कृषि पर निर्भर होने वाली जनसंख्या 61 प्रतिशत से बढ़कर 73 प्रतिशत हो गयी। इस प्रकार भारतीय हस्तशिल्पी वर्ग ने आधुनिक सर्वहारा वर्ग का रूप धारण कर लिया तथा इससे भूमि मजदूर वर्ग, औद्योगिक श्रमिक, किरायेदार तथा कृषक वर्ग में एकाकीपन की भावना पैदा हो गयी। वे सब एक जैसी समस्याओं से पीड़ित हो गये। ऐसी स्थिति ब्रिटिश काल से पूर्व कभी भी नहीं थी।

19वीं सदी के उत्तरार्द्ध में भारत में कुछ आधुनिक उद्योगों का विकास होने लगा था परन्तु रोजगार या उत्पादन की दृष्टि से स्थिति विकसित देशों के मुकाबले नगण्य ही थी। भारतीय औद्योगिक विकास 19वीं सदी के दौरान मूलतः कपास, जूट उद्योग एवं चाय बागानों तक सीमित था। बाद में सन 1930 ई0 के दौरान भी यह चीनी, सीमेन्ट तथा कागज उद्योग तक पहुँच पाया। सन 1907 ई0 में जमशेद जी टाटा ने लोहा एवं इस्पात उद्योग का शुभारम्भ किया।

इस प्रकार औपनिवेशिक काल में आम जनता के लिए कल्याणकारी कार्यों को नजरअंदाज कर ब्रिटिश सरकार ने अपने फायदे के लिए भारतीय अर्थव्यवस्था का भरपूर दोहन किया। उपनिवेशवाद ने अपने लाभ के लिए भारतीय अर्थव्यवस्था को विश्व अर्थव्यवस्था से जोड़ दिया। यह सम्बन्ध मूल रूप से असमानता के सिद्धान्त पर आधारित था। 18वीं सदी के अन्तिम दशकों में ब्रिटिश सरकार ने अनेक भेदभावपूर्ण नीतियाँ अपनाकर भारतीय अर्थव्यवस्था को पूर्ण रूप से ब्रिटिश अर्थव्यवस्था के अधीन कर दिया। इससे भारत की स्थिति यह बन गयी कि वह कच्चे माल का निर्यातक तथा निर्मित माल का आयातक देश बन गया था।

200 वर्षों के औपनिवेशिक शासन के पश्चात जब भारत आजाद हुआ तब तत्कालीन भारतीय राजनेताओं, प्रशासकों एवं नीति निर्माताओं के लिए इन चुनौतियों से निजात पाना अत्यन्त चुनौतीपूर्ण रहा होगा। यह कल्पना की जा सकती है कि इन समस्त चुनौतियों के बीच चुनी गई लोकतांत्रिक सरकारों ने लगभग हर क्षेत्र में आधारभूत संरचना के विकास के लिए ऐसी योजनाएँ तैयार की जिससे वर्तमान विकसित भारत का निर्माण संभव हो सका।

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

अभ्यासार्थ प्रश्न

1. धन निष्कासन का सिद्धांत किसने दिया ?

   (अ) दादाभाई नौरोजी (ब) बालगंगाधर तिलक

   (स) आर. सी. दत्त (द) गोपाल कृष्ण गोखले

2. किस भू–राजस्व व्यवस्था में भूमि का मालिक जमींदार को माना गया है ?

   (अ) स्थायी बंदोबस्त (ब) महलवाड़ी पद्धति

   (स) रैयत वाड़ी भू–राजस्वव्यवस्था (द) उपर्युक्त में से कोई नहीं

3. रैयत वाड़ी भू–राजस्व व्यवस्था किसके द्वारा लागू की गई ?

   (अ) कॉर्नवालिस एवं जॉन शोर (ब) रीड एवं मूनरो

   (स) मार्टिन बर्ड (द) केनिंग

4. पावर्टी एण्ड अन ब्रिटिश रूल इन इण्डिया' नामक पुस्तक किसके द्वारा लिखी गई ?

   (अ) दादाभाई नौरोजी (ब) बालगंगाधर तिलक

   (स) आर. सी. दत्त (द) गोपाल कृष्ण गोखले

5. धन निष्कासन से आप क्या समझते है ?

6. भू–राजस्व व्यवस्थाओं का भारत की कृषि एवं अर्थव्यवस्था पर क्या असर पड़ा ?

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

अध्याय–2

भारत का स्वतंत्रता आंदोलन

19वीं शताब्दी में भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन का सूत्रपात हुआ जिसका प्रारंभ भारत में यूरोपीय शक्तियों के प्रवेश के साथ हुआ। विभिन्न यूरोपीय शक्तियों में प्रचुर संसाधनों से परिपूर्ण भारत देश के साथ व्यापार करने की होड़ शुरू हो गईं। व्यापार करने आई कम्पनियाँ भारत में साम्राज्य विस्तार की प्रतिस्पर्धा में शामिल हो गई। इसमें इग्लैंण्ड की ईस्ट इण्डिया कम्पनी अग्रणी रही। सन 1757 ई. की प्लासी की लड़ाई, अक्टूबर, 1764 में बक्सर के युद्ध तथा सन 1765 ई. की इलाहाबाद की संधि से भारत में ब्रिटिश साम्राज्य की नींव पड़ी। कम्पनी के लगातार होने वाले विस्तार ने भारतीय राज्यों व रियासतों को गहरा आघात पहुँचाया।

लॉर्ड वेलेजली की सहायक संधि प्रथा के कारण ही भारतीय राज्य ब्रिटिश साम्राज्य में विलीन होते चले गये। वॉरेन हेस्टिंग्स एवं लॉर्ड कार्नवालिस के समय हुए प्रशासनिक व न्यायिक परिवर्तनों ने भारत में कम्पनी के साम्राज्य को मजबूती प्रदान की। कम्पनी के अधिकारियों ने प्रशासन और न्याय के साथ–साथ आर्थिक मामलों को भी इस प्रकार नियंत्रित किया कि कम्पनी को लगातार मुनाफा हो। इस प्रकार राजनीतिक, प्रशासनिक एवं न्यायिक ढाँचे को छिन्न–भिन्न कर कम्पनी ने अपने फायदे के लिये विभिन्न परिवर्तनों की शुरूआत की।

विभिन्न भू–राजस्व नीतियों को लागू करने से कम्पनी को तो नियमित राजस्व की प्राप्ति होती रही, लेकिन इन राजस्व नीतियों के दुष्परिणामों के कारण भारतीय ग्राम्य अर्थव्यवस्था का ढाँचा चरमरा गया। इस प्रकार राजनीतिक, प्रशासनिक, न्यायिक एवं आर्थिक ढाँचे में परिवर्तन के साथ–साथ कम्पनी प्रशासन ने भारत के सामाजिक और धार्मिक मामलों में भी हस्तक्षेप की नीति अपनाई। कम्पनी शासन ने विभिन्न अधिनियमों के माध्यम से भारतीय समाज की विभिन्न कुरीतियों का निषेध करना चाहा, लेकिन भारतीय जनमानस जो पहले ही विभिन्न परिवर्तनों से सामंजस्य स्थापित नहीं कर पाया था, वह इन सामाजिक व धार्मिक मामलों में अंग्रेजी प्रशासन के हस्तक्षेप से और असंतुष्ट हो गया। लॉर्ड डलहौजी द्वारा गोद निषेध की नीति के तहत राज्य हड़पे जाने के कारण भारतीय असंतोष और गहरा हो गया। इन सारे परिवर्तनों के साथ–साथ अंग्रेजों की प्रजातीय विभेद की नीति ने भारत में अंग्रेजों और भारतीय समाज के मध्य खाई को और गहरा कर दिया।

भारत में अंग्रेजी शासन का चरित्र विदेशी ही रहा था और यही कारण था कि भारत में प्रथम बार एक विदेशी शक्ति को भारत से बाहर निकालने के लिए एक संगठित जन आंदोलन खड़ा हुआ। भारत पर अंग्रेजों से पूर्व कई विदेशी आक्रमण हुए चाहे वे यूनानी, शक, मंगोल, कुषाण, तुर्क मुगल या अफगानी रहे हो, परन्तु इनमें से किसी भी विदेशी शक्ति ने भारतीय राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक तथा धार्मिक ढाँचे को इतनी चोट नहीं पहुँचाई जितनी अंग्रेजी राज ने पहुँचाई। इसी के परिणामस्वरूप 19वीं शताब्दी में विभिन्न सैनिक विद्रोह

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

हुए तथा इस असंतोष की परिणति का सबसे बड़ा विस्फोट 1857 की क्रान्ति के रूप में सामने आया। इस क्रान्ति के पश्चात् कम्पनी का शासन समाप्त हुआ और वाइसराय ब्रिटिश ताज के प्रतिनिधि के रूप में भारत में ब्रिटिश शासन के प्रमुख बन गये।

19वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में लॉर्ड लिटन की प्रतिक्रियावादी नीतियाँ जैसे शस्त्र अधिनियम, वर्नाक्यूलर प्रेस एक्ट तथा दिल्ली दरबार के आयोजन के कारण भारतीय असंतोष लगातार बढ़ता रहा। ब्रिटिश आर्थिक नीतियों के दुष्परिणामों के कारण भारत में लगातार अकाल पड़ने लगे और लोगों में ब्रिटिश शासन के खिलाफ एक सुसंगठित विरोध की भावना जन्म लेने लगी। इसी के फलस्वरूप 1885 में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना हुई जिसने एक संगठित विरोध का सूत्रपात किया।

भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन विश्व इतिहास के सबसे बड़े जन आंदोलनों में से एक था। यह आंदोलन भारतीय जनता के एक विशाल अंग को राजनीतिक गतिविधियों में सम्मिलित और सक्रिय करने तथा उन्हें राजनीतिक शिक्षा देने में सफल हुआ।

भारतीय राष्ट्रवाद के विकास के कई चरण थे। जैसे–जैसे यह एक चरण से दूसरे चरण की तरफ बढ़ा, इसका सामाजिक आधार भी अधिक व्यापक होने लगा, इसके लक्ष्य अधिकाधिक साहसिक और अधिक स्पष्टता से परिभाषित हुए तथा यह विभिन्न रूपों में अभिव्यक्त हुआ। भारत और सारे विश्व में विभिन्न शक्तियों के विकास के फलस्वरूप भारतीयों ने अधिकाधिक तादाद में राष्ट्रीय चेतना और दृष्टि अपनाई। राष्ट्रीय जीवन के सामाजिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक, हर क्षेत्र में यह राष्ट्रीय जागरण परिलक्षित हुआ।

19वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में व्यवस्थित रूप में राष्ट्रीय आन्दोलन की शुरूआत हुई। इसके उद्भव एवं विकास के लिए उत्तरदायी कारण निम्न थे :–

1. भारत का राजनीतिक एकीकरण– ब्रिटिश साम्राज्यवाद के कारण देश को राजनीतिक एकता प्राप्त हुई तथा लोगों ने एक राष्ट्र के संदर्भ में सोचना प्रारम्भ किया। अंग्रेजों के भारत में आने से पूर्व दक्षिण के लोग प्रायः थोड़ी अवधि को छोड़कर देश के शेष भाग से अलग थे। अंग्रेजों ने सम्पूर्ण देश को एक केन्द्रीय शासन के अन्तर्गत ला दिया जिससे एक ऐसी राजनीतिक एकता उत्पन्न हुई जो प्राचीन और मध्य काल से भिन्न थी। अतः भारतीयों में अखण्ड और स्वतंत्र भारत राष्ट्र का विचार इस राजनीतिक एकीकरण का परिणाम था।

2. पाश्चात्य शिक्षा का प्रभाव– पाश्चात्य शिक्षा ने भारतीय चेतना को दो प्रकार से शक्ति प्रदान की। एक तो यह कि अंग्रेजी भाषा पूर्व और पश्चिम की सम्पर्क भाषा बन गई। भारत के शिक्षित नवयुवक यूरोप जाने लगे। वे मिल, मिल्टन और रूसो आदि के जनतंत्रवादी, स्वतंत्रता प्रेमी व राष्ट्रवादी विचारों से प्रेरित हुए तथा भारत में भी समानता व स्वतंत्रता पर आधारित शासन व्यवस्था की स्थापना के इच्छुक हो गये। दूसरा यह कि अंग्रेजी के रूप में हमें एक सम्पर्क भाषा प्राप्त हुई जिससे भारत के विविध क्षेत्रों के निवासियों का पारस्परिक विचार–विमर्श के माध्यम से राष्ट्रवाद को एकीकृत व मजबूत बनाने का अवसर प्राप्त हुआ।

3. प्रेस की भूमिका– भारतीय राष्ट्रवाद के राजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक व आर्थिक रूप के विकास में प्रेस का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा। प्रेस द्वारा निष्पादित प्रचार व राजनीतिक शिक्षा की सुविधा के कारण ही राष्ट्रीय आंदोलन का राजनीतिक रूप उजागर हुआ। इसके माध्यम से भारतीय राष्ट्रवादी ब्रिटिश सरकार व शासन की कार्यवाही की प्रतिदिन आलोचना कर सके तथा लोगों को राजनीतिक समस्याओं की समझ और शिक्षा दे सके। प्रेस की मदद से ही वे लोगों के बीच स्वतंत्र लोकतान्त्रिक समस्याओं, प्रतिनिधि सरकार, डोमिनियन स्टेटस की विषय वस्तु, स्वाधीनता आदि विचारों का प्रचार कर सके।

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

भारत में सबसे पहला समाचार पत्र ''बंगाल गजट'' प्रकाशित हुआ जो साप्ताहिक था। राजा राममोहनराय ने राष्ट्रीय प्रेस की नींव रखी। उनके द्वारा प्रकाशित बंगला पत्र ''संवाद कौमुदी'' तथा फारसी पत्र ''मिरात उल अखबार'' ने देश में राजनीतिक जागरण का कार्य किया।

4. राष्ट्रीय साहित्य का विकास– सन 1878 तक भारत में नवजागरण के चिह्न उनकी विभिन्न भाषाओं में देखे गये। इनमें राष्ट्रीय साहित्य का जन्म हुआ जो एक तरफ तो भारतवासियों के बढ़ते आंदोलन का दर्पण था तो दूसरी तरफ उसे बढ़ाने का प्रयास था। आधुनिक हिन्दी के पिता भारतेन्दु हरिशचन्द्र मात्र साहित्यकार न थे, अपितु वे प्रसिद्ध सुधारक और स्वदेशी आंदोलन के अग्रदूत थे। उन्होंने सन 1876 ई0 में ''भारत दुर्दशा'' नामक नाटक लिखा जिसमें उन्होंने अंग्रेजों के राज में भारत की दुर्दशा का चित्र खींचा। अन्य रचनाकारों जैसे बद्रीनारायण चौधरी, प्रतापनारायण मिश्र, बालकृष्ण भट्ट आदि की रचनाओं में भी देश प्रेम की झांकी मिलती है।

5. परिवहन तथा संचार के साधनों का विकास– परिवहन व संचार के साधनों में सुधार और विकास के कारण देश में राष्ट्रीय आंदोलन की और भी शीघ्र प्रगति हुई। रेलवे व नई डाक व्यवस्था ने देश को एकसूत्र में बाँधने में बहुत मदद की। भारतीय नेताओं ने अपने आप को इस स्थिति में अनुभव किया कि वे अपने राष्ट्रीय आंदोलन को देश के प्रत्येक कोने में ले जा सकें।

अंग्रेजों ने इन साधनों की स्थापना अपने व्यापारिक आर्थिक, राजनीतिक और सैनिक स्वार्थों की पूर्ति के लिए की थी। इसके बिना वे भारत जैसे विशाल देश पर शांतिपूर्वक शासन नहीं कर सकते थे। किन्तु इन साधनों का लाभ भारतीय राष्ट्रवाद के विकास में भी हुआ। इन विकसित साधनों ने भारत के सभी प्रदेशों को एक–दूसरे के समीप ला दिया, जिससे भौगोलिक सीमाएँ राजनीतिक सीमाओं में परिवर्तित हो गई। इसके बिना राष्ट्रीय आंदोलन की कल्पना भी नहीं की जा सकती थी।

6. प्रजातीय विभेद की नीति– ब्रिटिश शासन के प्रति भारतीयों के असंतोष का एक महत्त्वपूर्ण कारण उनकी प्रजातीय विभेद की नीति थी। भारतीयों को बौद्धिक, शारीरिक एवं चारित्रिक दृष्टि से हीन समझा जाता था और इसी कारण से उन्हें लोक सेवाओं में, सेना में, परिषदों में एवं अन्य महत्त्वपूर्ण पदों पर नियुक्त नहीं किया जाता था। अनेक सार्वजनिक स्थलों पर भारतीयों का प्रवेश प्रतिबंधित किया गया। दादा भाई नौराजी ने लंदन की ईस्ट इंडिया एसोसिएशन से माँग की कि भारतीयों को अपशब्द कहना और अपमानित करना बंद किया जाए। इन घटनाओं से भारतीयों ने स्पष्ट समझ लिया कि उन्हें गुलामी जैसी हालत को बदलने के लिए ब्रिटिश शासकों से लड़ना पड़ेगा। प्रजातीय अहंकार का चरमोत्कर्ष सन 1883 ई. के इल्बर्ट बिल पर उपजे विवाद के समय देखा जा सकता है। एक सामान्य प्रेम की भावना के स्थान पर एक सामान्य घृणा की भावना ने भारतीय जनमानस को राष्ट्रीय रूप में एक होने की प्रेरणा दी।

7. 1857 के विद्रोह की अंग्रेजी प्रतिक्रिया से भारतीय अपमानित– सन 1857 ई. में विद्रोह के होने से पूर्व बहुत से अंग्रेज ऐसे थे जो ईमानदारी के साथ भारतीयों के भले के लिए कार्य करते थे, किन्तु विद्रोह के दिनों में दोनों ओर से बहुत सा रक्त बहाया गया। विद्रोह के पश्चात यूरोपियन ने भी असहाय तथा निर्दोष भारतीयों से बदला लिया तथा दमनकारी नीति अपनाई। भारतीयों को देश में प्रशासन के अन्तर्गत महत्त्वपूर्ण पदों तथा विधान मण्डलों से वंचित कर दिया गया।

इस प्रकार के अपमान व अत्याचार के फलस्वरूप भारतीयों में राष्ट्रवाद तथा राष्ट्रीय एकता की प्रवृत्ति को बल मिला।

8. सामाजिक एवं धर्म सुधार आंदोलन– हिन्दू समाज व धर्म में अनेक कुरीतियाँ व कमियाँ तथा

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

ईसाई धर्म का खुलापन आमने–सामने था। अंग्रेजों द्वारा उसे अपनाने वालों को दिये गये लालच व लाभों के परिणामस्वरूप पढ़े लिखे भारतीयों में ईसाई धर्म के प्रति आकर्षण उत्पन्न हो गया, जिससे वे ईसाई धर्म स्वीकार करने लगे। इससे राजाराम मोहन राय, विवेकानन्द, दयानन्द सरस्वती, एनी बेसेन्ट आदि भारतीयों का हिन्दू धर्म में व्याप्त कुरीतियों व कमियों की ओर ध्यान गया। शुरू के धर्म सुधारकों ने व्यक्ति की स्वतंत्रता के सिद्धान्त को धर्म के क्षेत्र में प्रचारित किया। वास्तव में ब्रह्म समाज, प्रार्थना समाज, आर्य समाज और अन्य संस्थाएँ पुराने धर्म को नये समाज की आवश्यकताओं के अनुकूल बनाने का प्रयास कर रहे थे। भारत के आरम्भिक धर्म सुधार आंदोलन में ऐसे धार्मिक दृष्टिकोण को विकसित करने की कोशिश की जो हिन्दू, मुसलमान, पारसी, सिख आदि सभी समुदायों की एकता कायम कर सके। भारत के प्रथम राष्ट्रीय जागरण का स्वरूप पहले धार्मिक था फिर धीरे–धीरे राष्ट्रवाद की भावना गहरी होती चली गई। उसके साथ उसका स्वरूप धर्म निरपेक्ष होने लगा।

9. अंग्रेज सरकार की खुले व्यापार की नीति– अंग्रेज सरकार की खुले व्यापार की नीति देश के विकास के मार्ग में बाधक थी।

भारतीयों की आर्थिक स्थिति ब्रिटिश शासन के काल में बिगड़ चुकी थी। चार करोड़ भारतीयों को दिन में केवल एक बार खाना खाकर संतुष्ट रहना पड़ता था। इसका एकमात्र कारण यह था कि इंग्लैंड भूखे किसानों से बलपूर्वक कर प्राप्त करता था। यहाँ अपना माल भेजकर लाभ कमाता था। इस प्रकार ब्रिटेन के अतुल्य ऐश्वर्य में और अधिक वृद्धि होती रही तथा भारत गरीबी के दुष्चक्र में फंस गया।

10. इल्बर्ट बिल विवाद– प्रचलित न्याय प्रणाली के अनुसार प्रेसीडेंसी को छोड़कर अन्य कहीं भी अंग्रेजों के विरुद्ध अभियोगों की सुनवाई केवल अंग्रेज न्यायाधीश ही कर सकते थे। कोई भारतीय न्यायाधीश ऐसा नहीं कर सकता था। लॉर्ड रिपन ने न्याय प्रणाली में समानता स्थापित करने के लिए अपनी परिषद के विधि सदस्य सी.पी. इल्बर्ट को इस सबंध में एक विधेयक प्रस्तुत करने को कहा। अतः इल्बर्ट ने एक विधेयक प्रस्तुत किया जिसमें भारत में रहने वाले यूरोपियनों के विरुद्ध अभियोग की सुनवाई का अधिकार भारतीय मजिस्ट्रेटों को देने की व्यवस्था की। इस विधेयक से समस्त यूरोपियनों में खलबली मच गयी। अंग्रेजों ने इसे काला कानून कहा। भारत के अधिकांश गैर सरकारी अंग्रेज इस विरोध में सम्मिलित हो गये। यूरोपियनों के इस संगठित विरोध ने भारतीयों की आँखे खोल दीं। उन्होंने अनुभव किया कि राजनीतिक प्रगति के लिए संगठित होना आवश्यक है। इसी आंदोलन से प्रेरित होकर बाद में भारतीयों ने संस्थाओं का निर्माण शुरू किया।

भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना से पूर्व राजनीतिक संस्थाओं का उदय

कांग्रेस की स्थापना से पूर्व देश के अलग–अलग क्षेत्रों में अनेक राजनीतिक संस्थाओं का निर्माण किया गया जिन्होंने भले ही अपने व्यक्तिगत स्वार्थ से ही सही, किन्तु राष्ट्रवाद के उदय में अपना योगदान दिया। भारतवासियों के लिए यह विचार नया ही था कि लोग किसी राजनीतिक संगठन को तैयार कर सकते हैं। सन 1838 ई0 में बंगाल के जमींदारों ने लैंड होल्डर्स सोसायटी बनाई जिसने कर मुक्त भूमि के अपहरण का विरोध किया तथा कुछ अंशों तक उसे सफलता भी मिली। तत्पश्चात अनेक संस्थाएँ बनी जो राजनीतिक अधिकारों को प्राप्त करने हेतु सरकार को ज्ञापन देती रहीं। सन 1851 ई0 में कलकत्ता के जमींदारों ने राजनीतिक उद्देश्य से ब्रिटिश इण्डियन एसोसिएशन नामक संस्था बनायी। बड़े व्यापारियों और जमींदारों ने मिल कर सरकार के सम्मुख प्रशासनिक सुधार की माँग की। इन संस्थाओं ने अपने–अपने प्रांतों की राजनीतिक गतिविधियों में भाग लिया।

सन 1857 के बाद के दशकों में उच्च शिक्षा का प्रसार हुआ तो बुद्धिजीवियों ने यह अनुभव किया कि

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

जमींदारों के संगठन के अलावा उन्हें भी अलग से अपने विचार रखने चाहिए। दादा भाई नौरोजी ने लंदन में ईस्ट इण्डियन एसोसियेशन स्थापित करके भारत के प्रमुख नगरों मे इसकी शाखाएँ स्थापित की। सन 1870 ई. में महादेव गोविन्द रानाडे ने पूना सार्वजनिक सभा बनाई जिसमें महाराष्ट्र क्षेत्र में राजनीतिक क्षेत्र में सक्रिय भूमिका निभाई। सन 1876 ई0 में सुरेन्द्र नाथ बनर्जी ने इण्डियन एसोसियेशन की स्थापना की। इस संस्था ने लम्बी अवधि तक प्रमुख विषयों पर भारतीयों की आवाज को सरकार तक पहुँचाने का कार्य किया। इस संस्था के नेताओं ने अपनी संस्था को अखिल भारतीय स्वरूप देने की भरसक कोशिश की लेकिन वे अनेक कारणों से सफल नहीं हो सके। वह मूलतः बंगाल का ही संगठन रहा। अतः दिसम्बर, 1883 में इंडियन एसोसिएशन के प्रयत्नों से इण्डियन नेशनल कान्फ्रेंस का पहला सम्मेलन कलकत्ता में हुआ। इसमें विभिन्न क्षेत्रों से आये लोगों ने भाग लिया। इसमें प्रथम प्रस्ताव द्वारा माँग की गई कि सिविल सर्विस की परीक्षा उसी समय भारत में भी ली जाये जब ब्रिटेन में होती है तथा इसमें बैठने की आयु बढ़ाकर 22 वर्ष कर दी जाये। दूसरे प्रस्ताव में राष्ट्रीय कोष के संग्रह के महत्त्व को जोर दिया गया। तीसरे प्रस्ताव में भारत में प्रतिनिधि विधानसभाओं की माँग की गई। चौथे प्रस्ताव में आर्म्स एक्ट के रद्द करने की माँग की गई तथा पाँचवे प्रस्ताव में इल्बर्ट बिल पर हुये समझौते पर खेद प्रकट किया। पूर्णतः सफल न होने पर भी सम्मेलन का अपना महत्त्व रहा। यह सभी राष्ट्रीय नेताओं को एक मंच पर लाने और संयुक्त अखिल भारतीय राष्ट्रीय संगठन की स्थापना की तरफ पहला कदम था। दूसरी इंडियन नेशनल कान्फ्रेंस कलकत्ता में सन 1885 ई0 में हुई। इसी क्रम में 28 दिसम्बर, 1885 को व्योमेश चन्द्र बनर्जी की अध्यक्षता में मुम्बई में ''भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस'' की स्थापना हुई। इसमें देश भर के 72 प्रतिनिधि मौजूद थे। ए.ओ. हयूम इसके सचिव थे। भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के नेतृत्व में देश में स्वतंत्रता के लिए राष्ट्रीय आंदोलन चलाया गया।

कांग्रेस के नेतृत्व में चलाये गये राष्ट्रीय आंदोलन को तीन चरणों में बाँटा जाता है :–

1. उदारवादी चरण (सन 1885 से सन 1905)
2. उग्रवादी चरण (सन 1905 से सन 1920)
3. गाँधी युग (सन 1920 से सन 1947)

राष्ट्रीय आंदोलन का उदारवादी युग (सन 1885 से सन 1905)

सन 1885 ई0 से सन 1905 ई0 तक के राष्ट्रीय आंदोलन को ''उदारवादी चरण'' कहा जाता है। इस अवधि में राष्ट्रीय आंदोलन का नेतृत्व वकील, डॉक्टर, अध्यापक, लेखक, पत्रकार आदि मध्यवर्गीय बुद्धिजीवियों के हाथों में रहा। नेताओं में दादाभाई नौरोजी, महादेव गोविन्द रानाडे, सुरेन्द्र नाथ बनर्जी, फिरोजशाह मेहता, गोपाल कृष्ण गोखले आदि प्रमुख थे। इस चरण के नेताओं का विश्वास था कि अभी लोगों को राजनीतिक मामलों पर जागरूक करना जरूरी है, ताकि उनमें अंग्रेजी राज का विरोध करने का आत्मविश्वास पैदा हो सके। इस दौर के राष्ट्रवादियों का समस्त दर्शन एवं कर्म इसी दृष्टि से प्रेरित था। इनका मुख्य उद्देश्य एक ऐसा आर्थिक–राजनीतिक कार्यक्रम तैयार करना था, जिस पर विभिन्न क्षेत्रों, धर्मों, जातियों, भाषायी समूहों एवं वर्गों की आपसी सहमति हो सके।

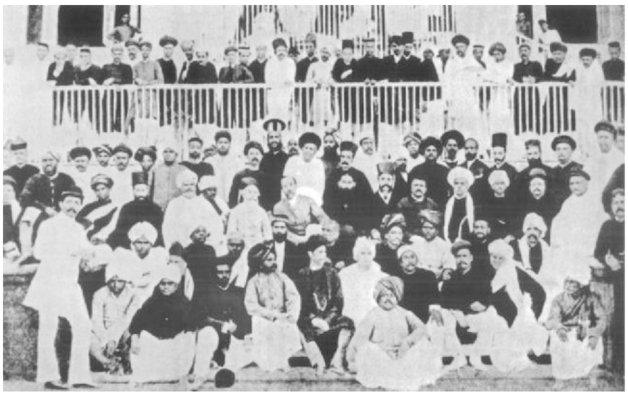

भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के प्रथम अधिवेशन में उपस्थित सदस्य

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

सर्वप्रथम राष्ट्रवादी नेताओं ने साम्राज्यवाद का आर्थिक विवेचन किया। उनके अनुसार अंग्रेजी उपनिवेशवाद का सार था भारतीय अर्थव्यवस्था को ब्रिटिश अर्थव्यवस्था के अधीन बनाना। भारत अंग्रेजी शासन के अधीन दिन पर दिन गरीब होता जा रहा था। यह गरीबी भारत के आर्थिक पिछड़ेपन का परिणाम थी और यह पिछड़ापन अंग्रेजी शासन का परिणाम था। अंग्रेजी शासन में भारत के पारम्परिक उद्योगों को नष्ट कर दिया और आधुनिक उद्योगों की प्रक्रिया को धक्का पहुँचाया। अंग्रेजी नीतियों द्वारा भारतीय कृषि का भी शोषण हुआ। उन्होंने सरकारी खर्चों की कड़ी आलोचना की। सरकारी पैसे का एक बड़ा हिस्सा सेना और प्रशासन में खर्च होता था लेकिन लोगों की शिक्षा और स्वास्थ्य जैसी जरूरतों की उपेक्षा की जाती थी। इन्होने धन निष्कासन के सिद्धान्त का प्रतिपादन किया जिससे यह साबित किया कि भारत से इंग्लैंड को अनेक माध्यमों द्वारा धन भेजा जाता है जिसके बदले में भारत को कोई प्रतिफल या लाभ प्राप्त नहीं होता है।

कांग्रेस के प्रारम्भिक उद्देश्य – प्रारंभ में कांग्रेस का उद्देश्य भारत को अंग्रेजी शासन से मुक्त करना नहीं था। उदारवादियों को अंग्रेजों की न्यायप्रियता में विश्वास था। कांग्रेस का उद्देश्य प्रतिनिधि सभाओं का विस्तार तथा उनमें भारतीयों की अधिकाधिक संख्या में वृद्धि करना था। साथ ही कांग्रेस ने अपने प्रारम्भिक अधिवेशनों में इन परिषदों के प्रतिनिधि चरित्र को विकसित करने की दृष्टि से निर्वाचित सदस्यों की एक निश्चित संख्या की भी माँग की थी। उदारवादियों ने प्रार्थना पत्रों, स्मरण पत्रों तथा प्रतिनिधि मण्डलों द्वारा ब्रिटिश सरकार से अपनी न्याय युक्त माँगों को मानने का आग्रह किया था। इस युग में कांग्रेस द्वारा कई राजनीतिक माँगे पेश की गईं जो निम्न प्रकार से हैं :

1. विधानमण्डलों का विस्तार हो और उनके सदस्य जनता द्वारा निर्वाचित हों तथा उनमें भारतीय सदस्यों की संख्या में वृद्धि की जाए।
2. न्याय व्यवस्था में जूरी का प्रयोग हो।
3. कार्यकारिणी तथा उच्च नौकरियों में भारतीयों को स्थान मिले तथा भारतीयों को उच्च सैनिक शिक्षा दी जाए।
4. शस्त्र कानून में संशोधन किया जाए तथा भारतीयों को अधिकार दिया जाए।
5. सन 1905 ई0 में गोखले ने ब्रिटिश साम्राज्य के अन्तर्गत स्वशासन की माँग की। सन 1906 ई0 में इसी माँग को दादा भाई नौरोजी ने दोहराया।

कांग्रेस ने सामाजिक और आर्थिक जीवन के क्षेत्र में आवश्यक सुधार के लिए निम्न माँगें रखी :

1. भूमि कर में कमी की जाए एवं सिंचाई की उचित व्यवस्था की जाए।
2. भारतीय उद्योगों को प्रोत्साहित किया जाए एवं उनका आधुनिकीकरण किया जाए।
3. भारत से बाहर भेजे जाने वाले अनाज पर प्रतिबन्ध लगाया जाए।
4. प्रशासनिक व्यय में कमी की जाए।
5. नमक कर को समाप्त किया जाए।

ब्रिटिश सरकार और कांग्रेस – प्रारम्भ में कांग्रेस की स्थापना को ब्रिटेन की महान विजय समझा जाता था परन्तु सरकार और कांग्रेस के बीच यह मधुर सम्बध अधिक समय तक कायम नहीं रह सका। शीघ्र ही सरकार इस संगठन से भयभीत हो गई तथा इसमें खतरा दिखाई देने लगा। सरकार ने कांग्रेस को प्रोत्साहन देना बंद कर दिया। सन 1888 ई0 से सरकार की कांग्रेस सम्बधी नीति में परिवर्तन हुआ। लॉर्ड डफरिन ने एक भोज के अवसर पर कहा ''अब कांग्रेस का झुकाव राजद्रोह की ओर हो गया है और यह संस्था

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

शिक्षित भारतीयों का नाम मात्र का प्रतिनिधित्व करती है।'' 1890 ई0 में सरकार ने एक विज्ञप्ति निकाली जिसके अनुसार सरकारी कर्मचारियों को कांग्रेस के अधिवेशन में शामिल होने की मनाही की गई। इस प्रकार सरकार और कांग्रेस के बीच आपसी सम्बधों में कटुता बढ़ने लगी।

सरकार के इस बदलते हुए रवैये के बावजूद कांग्रेस अपने रास्ते पर चलती रही। निस्संदेह कांग्रेस की कार्य नीति में कुछ परिवर्तन आया। कांग्रेस के नेताओं ने वाइसराय के विचारों का खण्डन करना शुरू किया। धीरे–धीरे कांग्रेस की ओर से विभिन्न भागों में सभाएँ की जाने लगीं और राष्ट्रीय माँगों की पूर्ति के लिए प्रस्ताव पारित होने लगे। किन्तु अब भी कांग्रेस नेताओं का अंग्रेजों में विश्वास था। सुरेन्द्रनाथ बनर्जी ने पूना कांग्रेस में भाषण देते हुए भारतवासियों को ब्रिटिश सरकार के प्रति वफादार बताया। इंग्लैण्ड में भी कांग्रेस के कार्यों का प्रचार तेजी से होने लगा जिसमें कुछ अंग्रेजों ने भी दिलचस्पी दिखाई। ब्रिटिश संसद के सदस्य चार्ल्स ब्रेडला और सर विलियम वेडरबर्न के नाम इस संदर्भ में विशेष उल्लेखनीय हैं, जिनके प्रयत्नों के फलस्वरूप सन 1890 ई0 में इंडियन पार्लियामेंटरी कमेटी की स्थापना हुई। इस कमेटी ने 1890 ई. में ''इंडिया'' नामक एक पत्रिका भी प्रकाशित की जो सन 1892 ई. में मासिक और 1896 ई. में साप्ताहिक रूप से प्रकाशित होने लगी। इन प्रयत्नों के परिणामस्वरूप 1892 ई. में भारतीय परिषद अधिनियम पास हुआ जिससे भारतीय विधानमंडल में कुछ सुधार हुए। यह सुधार अधिनियम कांग्रेस के प्रयत्नों का ही प्रतिफल था। परन्तु कांग्रेस इससे संतुष्ट नहीं हुई। यही नहीं, भारतीयों को जो थोड़े बहुत राजनीतिक अधिकार प्राप्त हुए थे उन पर भी कुठाराघात होने लगा। 1898 ई. में एक कानून पारित हुआ जिसके अनुसार अंग्रेजी शासन की आलोचना करना अपराध माना गया। सन 1899 ई. में कलकत्ता निगम के भारतीय सदस्यों की संख्या को घटा दिया गया। सन 1904 ई. में प्रेस की स्वतंत्रता सीमित कर दी गई। बालगंगाधर तिलक तथा अनेक समाचार पत्रों के सम्पादकों को कैद कर लिया गया। इससे राष्ट्रीय नेताओं में अत्यधिक असंतोष पैदा हुआ। सरकार भी कांग्रेस के प्रस्तावों को नकारती रही जिससे कांग्रेस के कुछ सदस्यों को विश्वास हो गया कि केवल प्रस्ताव पारित करने से उद्देश्य की सिद्धि नहीं होगी, इसके लिए कुछ ठोस कदम उठाने होंगे।

उदारवादियों की सफलता– उदारवादियों के कार्यक्रम में कमियाँ थीं और उन्हें अपने उद्देश्य में विशेष सफलता नहीं मिली लेकिन उनके महत्त्व को नजरअंदाज नहीं कर सकते। उन्होंने खुलकर सरकार का सामना नहीं किया क्योंकि वे तत्कालीन परिस्थिति से परिचित थे। यदि वे उग्र नीति अपनाते तो आरंभ में ही सरकार कठोरता से उनका दमन करती। ऐसी परिस्थिति में उन्होंने जो सेवा भारत के लिए की वह भी न हो पाती। वे भारतीय राष्ट्रीयता के अग्रदूत थे, इसे अस्वीकार नहीं किया जा सकता। वस्तुतः कांग्रेस के उदारवादी नेताओं के प्रयास से ही भारत में राष्ट्रीयता की लहर दौड़ी थी। उन्हीं के प्रयास से औपनिवेशिक स्वशासन तथा प्रशासनिक सुधार की माँगे की जाने लगी थी। भारतीयों को राजनीतिक प्रशिक्षण दिलाने एवं जागरूक करने की दिशा में उनका योगदान प्रशंसनीय था।

उदारवादियों के प्रयास से ही सन 1892 ई0 का भारतीय परिषद अधिनियम पारित हो सका था। भारत में प्रतिनिधिमूलक संस्थाओं के विकास में यह एक अत्यंत महत्त्वपूर्ण कदम था।

उदारवादियों के राजनीति पर पड़ने वाले प्रभाव से एक लाभ यह हुआ कि राष्ट्रवादियों के हृदय में आत्मविश्वास तथा आत्मसम्मान की भावना जाग्रत हुई। वे धीरे–धीरे समझने लगे कि ब्रिटिश शासन उनका कल्याण करना नहीं चाहता है।

भारतीय स्वतंत्रता संग्राम की नींव इन्हीं बीस वर्षों में उदारवादियों के प्रयास से डाली गई। उदारवादी नेताओं ने ही हमें इस योग्य बनाया कि हम स्वतंत्रता की माँग सरकार के समक्ष रख सके। डा0 पट्टाभि

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

सीतारमैया ने उदारवादियों के कार्यों की प्रशंसा में यह विचार व्यक्त किया कि प्रारम्भिक उदारवादियों ने ही आधुनिक स्वतंत्रता की इमारत की नींव डाली। उनके प्रयत्नों से ही इस नींव पर एक–एक मंजिल करके इमारत बनती चली गई। पहले उपनिवेशों के ढंग का स्वशासन, फिर साम्राज्य के अंतर्गत होम रूल, इसके ऊपर स्वराज और सबसे ऊपर पूर्ण स्वाधीनता की मंजिलें बन सकीं।

राष्ट्रीय आंदोलन का उग्रवादी युग (सन 1905 से 1920) –

सन 1905 ई. के बाद राष्ट्रीय आंदोलन ने एक नए दौर मे प्रवेश किया। इसके नेतृत्व की बागडोर उदारवादियों के स्थान पर उग्रवादी नेताओं ने संभाली। गरमपंथी नेतृत्व ने ब्रिटिश शासन एवं भारतवासियों के मध्य बुनियादी अन्तर्विरोध पर निरंतर बल दिया और उनके अनुसार राष्ट्रीय आंदोलन इस अन्तर्विरोध का ही परिणाम था। बाल गंगाधर तिलक, अरविन्द घोष, विपिनचन्द पाल एवं लाला लाजपतराय गरम दल के प्रमुख नेता थे।

लोकमान्य तिलक पहले नेता थे, जिन्होंने राष्ट्रीय आंदोलन में स्वराज शब्द का प्रयोग किया। बाद में गांधीजी ने उनके बारे में कहा कि ''लाखों अन्य देशवासियों की तरह मैं भी उनके अपार ज्ञान, अदम्य साहस, देश प्रेम, व्यक्तिगत जीवन में सादगी और पवित्रता तथा महान त्याग का प्रशंसक हूँ। अपने समकालीन नेताओं की तुलना में उन्होंने अपने देशवासियों को सबसे अधिक प्रेरित किया। उन्होंनें हमारे हृदयों में स्वराज की भावना का संचार किया।'' अंग्रेजी सरकार की बुराइयों का जितना ज्ञान लोकमान्य तिलक को था उतना शायद उस समय के किसी और नेता को नहीं था। तिलक पहले राष्ट्रीय नेता थे जिन्होंने राष्ट्रीय आंदोलन में मजदूरों और किसानों की महत्त्वपूर्ण भूमिका को पहचाना। उन्होंने मुम्बई के मजदूरों के बीच सक्रिय रूप से राजनीतिक कार्य किया। इसी का परिणाम था कि जब सन 1908 में तिलक को छह वर्षों की सजा दी गई, तब मिल के मजदूरों और रेल कर्मचारियों ने छह दिन की हड़ताल की।

गरमपंथी नेता बड़े पैमाने पर राजनीतिक संघर्ष और उसमें जनता की सक्रिय भागीदारी के समर्थक थे। उन्होंने स्वदेशी, बहिष्कार, राष्ट्रीय शिक्षा और स्वराज को राष्ट्रीय आंदोलन का मूलमंत्र बना दिया। उन्होंने नरमपंथियों के संवैधानिक उपायो को 'भिक्षावृत्ति' बताते हुए सरकार के विरुद्ध निष्क्रिय प्रतिरोध पर आधारित व्यापक आंदोलन पर बल दिया। गरम दल के नेताओं ने स्वतंत्रता संग्राम के लक्ष्य को स्पष्ट शब्दों में सामने रखा। तिलक ने घोषणा की ''स्वराज हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है और हम इसे लेकर रहेगें।'' अब राष्ट्रीय आंदोलन अपने विकास के अगले दौर में प्रवेश के लिए तैयार था इसके लिए वातावरण तब तैयार हुआ जब अंग्रेजी सरकार ने 20 जुलाई, 1905 को बंगाल के विभाजन का फैसला किया।

भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने बंगाल–विभाजन के फैसले को राष्ट्रीय आंदोलन को कमजोर करने की ब्रिटिश चाल के रूप में देखा। उन्होंने इस फैसले का विरोध किया और इसके खिलाफ बंगाल में विशाल जन–आंदोलन संगठित किया। शुरू में इस आंदोलन का नेतृत्व सुरेन्द्र नाथ बनर्जी एवं कृष्ण कुमार मित्र जैसे नरमपंथियों के हाथों में था लेकिन बाद में नेतृत्व गरम दल के नेताओं विपिन चन्द पाल, अरविन्द घोष एवं अश्विन कुमार दत्त के हाथों में आ गया।

बंग–भंग विरोधी आंदोलन का उद्‍घाटन 7 अगस्त, 1905 को हुआ, जब कलकत्ता में विभाजन के विरोध में एक विशाल सम्मेलन का आयोजन किया गया। इसके बावजूद जब 16 अक्टूबर, 1905 को बंग–भंग का निर्णय लागू कर दिया गया तो आंदोलन पूरे बंगाल में विस्तृत हो गया। कुछ ही समय में विदेशी सामान के बहिष्कार एवं केवल भारत में बने स्वदेशी सामान के इस्तेमाल से जुड़ी राजनीतिक गतिविधि प्रांरभ हुई। आंदोलन के नेताओं ने अंग्रेजी राज के कड़े मुकाबले के लिए एक व्यापक कार्यक्रम तैयार किया। बंग–भंग का

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

मसला भारत के स्वतंत्रता संग्राम से जुड़ गया।

स्वदेशी, बहिष्कार, राष्ट्रीय शिक्षा एवं स्वराज के नारों का धीरे–धीरे अन्य प्रान्तों में भी प्रसार होने लगा। सारा देश एक ही तरह के विचारों और राजनीति के सूत्र में बंधने लगा। लोकमान्य तिलक इस काल के सबसे बड़े नेता के रूप में उभरे। अंग्रेजी सरकार ने इस आंदोलन का जवाब दमन से दिया। सरकार ने सभाओं और प्रदर्शनों पर प्रतिबंध लगा दिया। सरकार ने जाति, प्रान्त, भाषा और सर्वाधिक, धर्म के आधार पर लोगों में फूट डालने का असफल प्रयास किया लेकिन तिलक की गिरफ्तारी तथा विपिन चन्द्र पाल एवं अरविन्द घोष द्वारा राजनीति से संन्यास लेने के बाद आंदोलन अधिक समय तक नहीं चल सका।

इस आंदोलन ने लोगों को राजनीतिक रूप से सजग एवं सक्रिय बनाया। उनमें आत्मविश्वास एवं आत्मनिर्भरता का भी संचार हुआ। अन्ततः सरकार को राष्ट्रवादियों की माँग के आगे झुकना ही पड़ा। सन 1911 ई0 में बंगाल–विभाजन के फैसले को वापस ले लिया गया। बंगाल का पुनः एकीकरण हुआ। बिहार और उड़ीसा को विशाल बंगाल से निकालकर एक अलग प्रांत बना दिया गया।

इस बीच कांग्रेस के मंच पर सन 1905 ई0 से सन 1907 ई0 के दौरान नरमपंथियों और गरमपंथियों के पारस्परिक मतभेद बढ़ते जा रहे थे। गरमपंथी आश्वस्त थे कि आजादी की लड़ाई शुरू हो गई है तथा जनता जागरूक हो चुकी है। अतः यही वह उचित समय है जब बंगाल में आंदोलन को और तेज किया जाए तथा इसे देश के अन्य प्रदेशों तक फैलाया जाए। उस समय इन गरमपंथियों के नेता थे अरविन्द घोष। दूसरी ओर, नरमपंथियों का मानना था कि गरमपंथियों के साथ रहना बहुत ही खतरनाक है। सरकार साम्राज्यवाद विरोधी किसी भी आंदोलन का दमन करने के लिए तैयार बैठी है, ऐसे में दमन को न्यौता देने का क्या औचित्य है ? इन नरमपंथियों के नेता थे – फिरोजशाह मेहता। 26 दिसम्बर, 1907 को ताप्ती नदी के किनारे सूरत में कांग्रेस का अधिवेशन हुआ। यहाँ औपचारिक रूप से कांग्रेस में फूट पड़ गई।

सन 1908 ई0 के बाद समूचा राष्ट्रीय आंदोलन पतन की ओर उन्मुख हो गया लेकिन लोगों के दिलों में राष्ट्रीय भावनाएँ मौजूद थीं। सन 1914 ई0 में जब 6 साल की कैद के बाद तिलक जेल से छूटे, तो उन्होंने राष्ट्रीय आंदोलन को पुनः पटरी पर चढ़ाया।

सन 1914 ई0 में प्रथम विश्वयुद्ध की पृष्ठभूमि में तथा सन 1915–16 में होम रूल लीगों की स्थापना से राष्ट्रीय आंदोलन का पुनरूत्थान हुआ। पहले होम रूल लीग के नेता लोकमान्य तिलक थे और दूसरे की नेता एनी बेसेन्ट थीं। दोनो होम रूल लीगों ने समन्वित तरीके से मीटिंग, भाषणों, दौरों, परचें और सम्मेलनों के द्वारा देश भर में प्रचार किया। उनकी मुख्य माँग थी – युद्ध के समाप्त होने पर होम रूल या स्वराज की प्राप्ति। सन 1916 ई0 में कांग्रेस का लखनऊ अधिवेशन होम रूल लीग के सदस्यों के लिए कांग्रेस में अपनी ताकत दिखाने का एक अच्छा मौका था।

सन 1916 ई0 के लखनऊ अधिवेशन में तिलक को पुनः कांग्रेस में शामिल कर लिया गया। इसी अधिवेशन में '' कांग्रेस मुस्लिम–लीग समझौता'' हुआ जो लखनऊ पैक्ट के नाम से जाना जाता है। इस समझौते में एनी बेसेन्ट और तिलक ने महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। तिलक ने एक और प्रस्ताव रखा कि एक कार्यकारिणी का गठन किया जाए जो कांग्रेस के निर्णयों व कार्यक्रमों को अमली रूप दे सके परन्तु यह प्रस्ताव मंजूर न हो सका। सन 1920 ई0 में गांधीजी ने कांग्रेस संविधान को जनाधारित आंदोलन के संचालन के अनुरूप नया रूप दिया तो उन्होंने तिलक के इसी प्रस्ताव को मानना जरूरी समझा।

क्रांतिकारी आंदोलन का प्रथम चरण –जिस समय कांग्रेस के राजनीतिक मंच पर गरम और नरम दलों का जन्म हो रहा था उस समय देश में क्रांतिकारी विचारधारा का प्रादुर्भाव हो रहा था। इस क्रांतिकारी

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

आंदोलन की पृष्ठभूमि गरमपंथी नेताओं के द्वारा ही तैयार की गई थी। गरमपंथी में एक वर्ग ऐसा भी था जो बलपूर्वक अंग्रेजी राज्य को समाप्त करना चाहता था। यह वर्ग क्रांतिकारियों का था। यह वैधानिक आंदोलन में कतई विश्वास नहीं करता था। क्रांतिकारी स्वतंत्रता प्राप्ति के लिए किसी भी साधन का प्रयोग उचित मानते थे।

क्रांतिकारी आंदोलन का मुख्य क्षेत्र बंगाल, महाराष्ट्र और पंजाब था। सन 1905 ई0 के बंग–भंग और स्वदेशी आंदोलन ने क्रांतिकारी आंदोलन को एक सबल सहारा दिया। सरकार की दमनकारी तथा प्रतिक्रियावादी नीति के परिणामस्वरूप ही इस आंदोलन का उग्र प्रचार हुआ। बंगाल में इस आंदोलन के प्रमुख नेता थे बारीन्द्र कुमार घोष और भूपेंद्र दत्त। उन्होंने **'युगांतर'** और **'संध्या'** पत्रिकाओं द्वारा उग्रवाद का प्रचार किया और बताया कि हमारी दृष्टि सुंदर भविष्य में होने वाली क्रांति पर जमी हुई है और हम उसके लिए तैयार होना चाहते हैं।

क्रांतिकारी आंदोलन धीरे–धीरे जोर पकड़ने लगा। फलतः, कई गुप्त क्रांतिकारी संस्थाएँ स्थापित हुईं। इनमें एक संस्था थी **अनुशीलन समिति।** इसकी शाखाएँ बंगाल में चारों तरफ फैली हुई थी। श्यामजी कृष्ण वर्मा तथा लाला हरदयाल के प्रयास से लंदन में भी क्रांतिकारी समितियाँ स्थापित की गई। राजनीतिक हत्याएँ तथा डकैतियाँ बढ़ने लगीं। कलकत्ता में प्रधान प्रेसीडेंसी–मजिस्ट्रेट किंग्सफोर्ड ने स्वदेशी आंदोलन के कार्यकर्ताओं को कोड़े लगवाये थे और कठोर दंड दिया था। शीघ्र ही किंग्सफोर्ड जज बनकर मुजफ्फरपुर आया। क्रांतिकारियों ने उसकी हत्या कर उससे बदला लेने का निश्चय किया। यह काम खुदीराम बोस और प्रफुल्ल चाकी को सौंपा गया। उन्होंने किंग्सफोर्ड के बँगले की ओर से आती हुई एक गाड़ी पर 30 अप्रैल, 1908 को बम फेंक दिया। उन्होंने समझा था कि गाड़ी में किंग्सफोर्ड होगा। किंतु, दुर्भाग्य से उस गाड़ी में मिस और मिसेज कैनेडी नामक दो महिलाएँ थीं जो मुजफ्फरपुर के एक वकील कैनेडी की पत्नी और पुत्री थी। बम के कारण दोनों की मृत्यु हो गई। प्रफुल्ल चाकी ने आत्महत्या कर ली पर खुदीराम बोस पकड़े गये और उसे फाँसी की सजा दे दी गई। इस प्रकार, वह देश की स्वतंत्रता की बलिवेदी पर शहीद हो गया। इस घटना के बाद कलकत्ता में एक बहुत बड़े क्रांतिकारी षड्यंत्र का पता लगा जिसमें अरविंद घोष, बारींद्र कुमार घोष और कई अन्य युवक गिरफ्तार कर लिए गए। यह घटना सामान्यतः अलीपुर षड्यंत्र केस के नाम से विख्यात है। सन 1913 ई0 में लाला हरदयाल ने गदर पार्टी की स्थापना की। इस दल ने 1913 ई0 के फरवरी महीने में पंजाब में सैनिक विद्रोह करने का निश्चय किया।

सन 1907 ई0 में क्रांतिकारी आंदोलन की पंजाब में शुरूआत हुई। सरदार अजीत सिंह, भाई परमानंद, बालमुकुंद और लाला हरदयाल ने कांतिकारियों को संगठित किया। महाराष्ट्र के क्रांतिकारियों में श्यामजी कृष्ण वर्मा, विनायक दामोदर सावरकर और गणेश सावरकर थे।

कान्तिकारी आन्दोलन का दूसरा चरण– महात्मा गाँधी के असहयोग आन्दोलन के पूर्णतया असफल होने से क्रांतिकारियों में पुनः उग्रता हुई। बंगाल में पुरानी अनुशीलन तथा युगान्तर समितियाँ पुनः जाग उठीं तथा उत्तरी भारत के लगभग सभी प्रमुख नगरों में क्रान्तिकारी संगठन बन गए। परन्तु प्रमुख बात यह थी कि अब यह समझा गया कि एक अखिल भारतीय संगठन सफलता के लिए आवश्यक है। अतः अक्टूबर, 1924 में कानपुर में समस्त क्रान्तिकारी दलों का एक सम्मेलन बुलाया गया जिसमें सचिन्द्रनाथ सान्याल, जगदीशचन्द्र चटर्जी तथा रामप्रसाद बिस्मिल जैसे क्रान्तिकारी नेताओं तथा भगत सिंह, शिव वर्मा, सुखदेव, भगवती चरण वोहरा, तथा चन्द्रशेखर आजाद जैसे युवा नेताओं ने भाग लिया। इसके फलस्वरूप सन 1928 ई0 में इण्डियन रिपब्लिक आर्मी का जन्म हुआ तथा विभिन्न प्रान्तों में इसकी शाखाएँ स्थापित की गईं।

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

इस चरण में क्रांतिकारियों का मुख्य उद्देश्य ब्रिटिश साम्राज्यवाद के स्थान पर समाजवादी विचाराधारा से प्रेरित, संयुक्त भारत में संघीय गणतन्त्र की स्थापना करना था। इन क्रान्तिकारियों ने अपने कार्य की पूर्ति के लिए धन एकत्रित करने के लिए निजी व्यक्तियों को न लूट कर, सरकारी कोषों को अपना निशाना बनाने का निश्चय किया।

09 अगस्त, 1925 को क्रान्तिकारियों ने सहारनपुर, लखनऊ लाइन पर काकोरी जाने वाली गाड़ी को सफलतापूर्वक लूटा। इस काकोरी काण्ड के अभियोग में जनता ने बहुत सी सहानुभूति का प्रदर्शन किया।

पंजाब में क्रान्तिकारियों ने सन 1928 ई0 में भगत सिंह के नेतृत्व में, साइमन आयोग के विरुद्ध प्रदर्शन करते हुए लाला लाजपतराय पर किए गए लाठी चार्ज के फलस्वरूप हुई मृत्यु का बदला लेने के लिए लाहौर के सहायक पुलिस कप्तान साण्डर्स की हत्या कर दी। पुलिस ने आम जनता पर दमन–चक्र चलाया। जनता में यह भावना हो गई कि क्रान्तिकारी अपना कार्य करके निकल जाते हैं और जनता दमन का शिकार हो जाती है। इस पर इण्डियन रिपब्लिक आर्मी ने दो क्रांतिकारियों को गिरफ्तार होने के लिए भेजा। इस योजना के अनुसार भगत सिंह और बटुकेश्वर दत्त ने दिल्ली में केन्द्रीय असेम्बली में 08 अप्रैल, 1929 को खाली बैंचों पर बम फेंके और गिरफ्तार हो गए। उनकी इच्छा किसी की हत्या करने की नहीं थी। उनका मानना था कि बधिरों को सुनाने के लिए बहुत तेज आवाज करनी पड़ती है। बाद में लाहौर षड्यन्त्र केस में भगत सिंह, सुखदेव और राजगुरू को 23 मार्च, 1931 को फांसी दे दी गई।

इसी प्रकार बंगाल में सूर्यसेन ने चटगांव शस्त्रागार पर धावा किया। (अप्रैल, 1930) इन क्रान्तिकारियों ने अपनी वीरता के प्रत्यक्ष प्रमाण तो दिए परन्तु इससे कुछ स्पष्ट लाभ नहीं हुआ। सूर्यसेन अन्त में पकड़े गए और 1933 में फांसी पर लटका दिए गए।

आज भारत की स्वतन्त्रता के लिए लड़ने वाले क्रान्तिकारी उन शहीदों के रूप में याद किए जाते हैं जो मातृभूमि के लिए अपने प्राणों की आहुति दे दी।

भगत सिंह

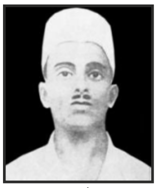
सुखदेव

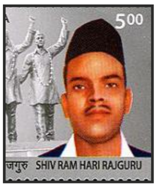

राजगुरु

चन्द्रशेखर आजाद

बारीन्द्र कुमार घोष

अशफाक उल्ला खान

बाघा जतिन

बटुकेश्वर दत्त

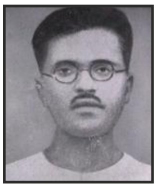
भगवती चरण वोहरा

हेमू कालानी

जतीन्द्र नाथ दास

खुदीराम बोस

प्रीतिलता वाड्डेदार

रोशन सिंह

उधम सिंह

बीना दास

मदन लाल धींगरा

कुशल कोवार

प्रफुल्ल चाकी

रामप्रसाद बिस्मिल

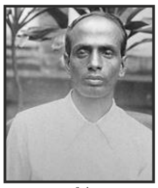
सूर्यसेन

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

राष्ट्रीय आंदोलन का गाँधी युग (सन 1920 से 1947) —

दिसम्बर, 1919 में अमृतसर में कांग्रेस का अधिवेशन हुआ जिसमें लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक ने अंतिम बार सहभागिता की। इसके तीन माह बाद तिलक की मृत्यु हो गई। अमृतसर कांग्रेस के दौरान तिलक ने एक अनौपचारिक वार्ता में यह कहा था कि ''मैं इसे (होमरूल) देखने के लिए जीवित न रहूँ, लेकिन हम यदि कड़ी मेहनत करें और इस नए काम में अपने मन को एकाग्र कर सकें तो नई पीढ़ी इसे अवश्य हासिल कर पाएगी। बहरहाल मैं मानता हूँ कि पंजाब की घटनाएँ, मार्शल लॉ शासन और जालियाँवाला बाग नरसंहार ने राजनीतिक वातावरण को विद्रोह की भावना से ओत–प्रोत कर दिया है जिसके नए प्रतीक गाँधी है। यद्यपि मैं मानता हूं कि अनुक्रियात्मक सहयोग से अधिकतम लाभ मिलेगा, फिर भी मैं रास्ते में रूकावट नहीं बनूँगा।''

अब राष्ट्रीय आंदोलन के आगामी चरणों के निर्विवाद नेता के रूप में गाँधी जी का उदय हुआ।

दक्षिण अफ्रीका में भारतीयों के साथ रंग भेद के आधार पर प्रजातीय दुर्व्यवहार किया जाता था। गांधीजी ने इसके खिलाफ संघर्ष का फैसला किया। सन 1893 ई0 से 1914 ई0 तक चलने वाले संघर्ष में गांधीजी ने सत्याग्रह आंदोलन के दर्शन का विकास किया।

जनवरी, 1915 में गांधीजी 45 वर्ष की अवस्था में भारत लौटे। रवीन्द्रनाथ टैगोर के शब्दों में कहें तो ''भिखारी के लिबास में एक महान आत्मा'' लौट आई थी। गांधीजी ने गोखले को अपना ''राजनीतिक गुरू'' बनाया जिनकी सलाह पहले वर्ष पर मूक दर्शक रहकर भारत की स्थिति का अध्ययन किया। राजकोट और पोरबंदर में अपने लोगों से भेंट करने के बाद गांधीजी शांति निकेतन गए। रवीन्द्रनाथ ने ही गाँधी जी को सर्वप्रथम ''महात्मा'' कहकर पुकारा। वहाँ से साल भर देश का दौरा करते रहे और अहमदाबाद में अपने आश्रम को जमाने का काम करते रहे।

गांधीजी ने भारत में अपनी राजनीतिक गतिविधियों की शुरूआत सन 1917 ई0 में उत्तरी बिहार में चंपारन नामक जगह से की। चंपारन में गांधी ने नील के बागान मालिकों द्वारा कृषकों के उत्पीड़न के विरुद्ध अभियान चलाया। वे अभी चंपारन में ही थे कि साबरमती आश्रम से शीघ्र अहमदाबाद लौटने का संदेश मिला। वहां कपड़ा मिलों के मजदूरों ने बेहतर मजदूरी की मिल–मालिकों से माँग की। अगले साल गांधीजी ने गुजरात के खेड़ा के किसानों के प्रशासन के खिलाफ संघर्ष का नेतृत्व किया।

चंपारन, अहमदाबाद एवं खेड़ा आंदोलनों ने गांधीजी को देश की जनता के नजदीक आने का अवसर दिया। उन्हें जनता की ताकत और उसकी कमजोरियों का पता चला। उन्होंने इन संघर्षो में अपने सत्याग्रह–दर्शन का व्यावहारिक प्रयोग किया। इन्हीं लड़ाइयों में गांधीजी को राजेन्द्र प्रसाद, आचार्य कृपलानी, मजहरूल हक, महादेव देसाई और सरदार पटेल जैसा युवा नेताओं का साथ मिला। वस्तुतः सरदार वल्लभ भाई पटेल गांधीजी के परम भक्तों में से थे। सरदार बल्लभ भाई पटेल ने गुजरात के नाडियाद नामक स्थान पर एक कृषक परिवार में जन्म लिया था। अपनी शिक्षा पूरी करने के बाद उन्होंने अहमदाबाद में ''क्रिमिनल लॉयर'' के रूप में वकालत शुरू कर दी। सन 1915 ई0 में 'गुजरात सभा' से जिसके अध्यक्ष गांधीजी थे, इन्होंने अपना राजनीतिक जीवन शुरू किया। 'रोलट बिल' के विरुद्ध प्रदर्शन में सक्रिय भागीदारी, ''सत्याग्रह पत्रिका'' का प्रकाशन, असहयोग आंदोलन में सहयोग तथा गुजरात विद्यापीठ की स्थापना के लिए ये पूर्णरूपेण जिम्मेदार थे। सन 1928 ई0 में बारदोली में किसान सत्याग्रह को सफल नेतृत्व प्रदान किया। इसी सत्याग्रह के बाद इन्हें सरदार की उपाधि मिले। ये गाँधी जी के विश्वसनीय साथी थे। सन 1946 ई0 में बम्बई के नाविक विद्रोह को शान्त करने में इन्होंने महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। आधुनिक भारत के निर्माताओं में सरदार पटेल प्रमुख थे। इन्होंने देशी रियासतों के एकीकरण में भी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। ये लौहपुरूष

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

माने जाते थे। सन 1950 ई0 में इनकी मृत्यु हो गई।

अब गाँधी जी भविष्य के बड़े संघर्ष के लिए तैयार थे, जिसने आगे चलकर भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन को विश्व इतिहास का सबसे बड़ा जन आन्दोलन बना दिया।

राष्ट्रीय आन्दोलन का आगामी घटनाक्रम– गाँधी जी के विचारों को इस चरण में व्यापक स्तर पर प्रयोग में लाया गया। इसीलिए सन 1920 ई0 के बाद के राष्ट्रीय आंदोलन के चरण को गांधीवादी चरण कहा जाता है।

रोलट सत्याग्रह– सन 1919 ई0 का वर्ष भारत के लिए अत्यंत असन्तोष का था। देश में फैल रही राष्ट्रीयता की भावना एवं क्रांतिकारी गतिविधियों को कुचलने के लिए ब्रिटेन को दमनात्मक शक्ति की आवश्यकता थी। रोलट समिति की सिफारिशों के आधार पर विलियम विन्सेन्ट ने दो विधेयकों का प्रस्ताव रखा। इन विधेयकों द्वारा यह व्यवस्था की गई थी कि जिस व्यक्ति पर राजद्रोही होने का सन्देह हो उसकी गतिविधि पर नियंत्रण रखा जाए, जिस व्यक्ति से शांति भंग होने की सम्भावना हो, उसे बन्दी बनाया जाए।

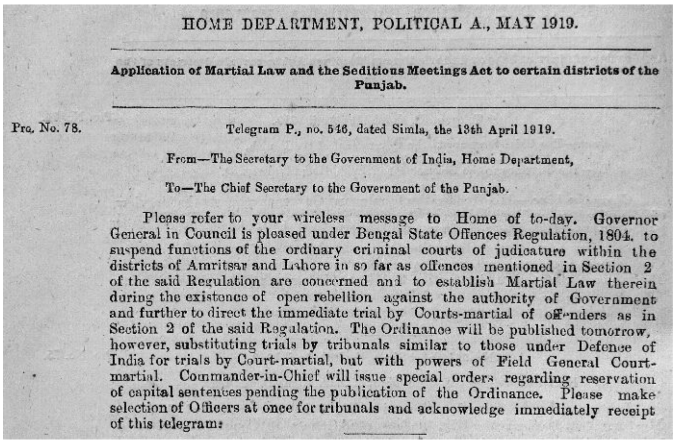

HOME DEPARTMENT, POLITICAL A., MAY 1919.

Application of Martial Law and the Seditious Meetings Act to certain districts of the Punjab.

Pro. No. 78.

Telegram P., no. 546, dated Simla, the 13th April 1919.

From—The Secretary to the Government of India, Home Department,

To—The Chief Secretary to the Government of the Punjab.

Please refer to your wireless message to Home of to-day. Governor General in Council is pleased under Bengal State Offences Regulation, 1804, to suspend functions of the ordinary criminal courts of judicature within the districts of Amritsar and Lahore in so far as offences mentioned in Section 2 of the said Regulation are concerned and to establish Martial Law therein during the existence of open rebellion against the authority of Government and further to direct the immediate trial by Courts-martial of offenders as in Section 2 of the said Regulation. The Ordinance will be published tomorrow, however, substituting trials by tribunals similar to those under Defence of India for trials by Court-martial, but with powers of Field General Court-martial. Commander-in-Chief will issue special orders regarding reservation of capital sentences pending the publication of the Ordinance. Please make selection of Officers at once for tribunals and acknowledge immediately receipt of this telegram.

पंजाब में मार्शल लॉ लगाने संबंधित टेलीग्राम

गांधीजी ने कहा कि ''रोलट विधेयक'' से छुटकारा पाने के लिए सत्याग्रह ही एकमात्र उपाय है। गांधीजी ने इस संदर्भ में गवर्नर – जनरल से भी इन पर पुनः विचार करने का अनुरोध किया परन्तु गांधीजी के अनुरोध एवं विधानसभा के भारतीय सदस्यों के विरोध करने पर भी 17 मार्च, 1919 को इनमें से एक विधेयक पास हो गया। जब संवैधानिक प्रतिरोध का अधिक प्रभाव नहीं हुआ तो गांधीजी ने सत्याग्रह शुरू करने का सुझाव दिया। उनकी अध्यक्षता में फरवरी, 1919 में एक सत्याग्रह सभा गठित की गई। 6 अप्रैल को जनता से हड़ताल की अपील की गई। जनता ने इस अपील पर बड़े उत्साह से अमल किया। तारीख के बारे में कुछ गलतफहमी के कारण दिल्ली में 30 मार्च को ही हड़ताल आयोजित कर ली गई जिसके दौरान काफी हिंसा फैली। बाकी जगहों पर भी हड़ताल के दौरान हिंसा हुई लेकिन पंजाब की घटनाएँ खतरनाक मोड़ ले रही थी।

जलियाँवाला बाग काण्ड– अमृतसर में भी सत्याग्रह के समर्थन में सभाएँ हुईं। वहाँ 6 अप्रैल तो शांति से निकल गया परन्तु 10 अप्रैल को अमृतसर के डिप्टी कमिशनर ने बिना किसी कारण पंजाब के दो नेताओं डा0 सत्यपाल और डा0 सैफुद्दीन किचलू को बंदी बनाकर उन्हें अज्ञात स्थान पर भेज दिया। इसका समस्त पंजाब में विरोध किया गया। उनकी रिहाई के लिए अमृतसर में हड़ताल घोषित कर दी गई। इस पर सेना बुलाई गई। सैनिकों ने प्रदर्शनकारियों पर अंधाधुंध गोलियाँ चलाई। 11 अप्रैल को जनरल डायर ने सेना सहित अमृतसर पर अधिकार कर लिया।

इस गोलीकांड की निंदा करने हेतु 13 अप्रैल को दोपहर को जलियाँवाला बाग में एक सभा का आयोजन किया गया। सभा में 20000 के लगभग लोग उपस्थित थे। जनरल डायर ने बिना किसी चेतावनी के जनता पर गोलियाँ बरसाना आरम्भ कर दिया। 10 मिनट में 1650 गोलियां चली। जलियाँवाला बाग चारों और इमारतों से घिरा हुआ है। वहां से निकलने का केवल एक ही सँकरा मार्ग था। जनरल डायर के 150 सैनिक

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

उस दरवाजे को रोककर गोलियाँ बरसा रहे थे। सरकारी रिपोर्ट के अनुसार मृतकों की संख्या 379 थी जबकि कांग्रेस की रिपोर्ट के अनुसार यह संख्या 500 थी। सरकार के अनुसार आहतों की संख्या 15000 थी। डायर के सैनिक तब तक गोलियाँ चलाते रहे जब तक वे समाप्त नहीं हो गई। इस प्रकार 13 तारीख को अमृतसर में सर्वाधिक दुःखद घटना घटी, जो जलियाँवाला बाग के हत्याकांड के नाम से प्रसिद्ध है। इस कांड के बाद भी सरकार ने दमन का रवैया बरकरार रखा। मार्शल लॉ लागू कर दिया गया। आतंकराज के उस काल में बड़े पैमाने पर गोलीकांड हुए, फाँसिया दी गई, हवाई जहाजों से बम बरसाये गये, लोगों को पेट के बल रेंगने के लिए मजबूर किया गया।

पंजाब में होने वाले इन अमानुषिक कार्यों की खबर जब भारत के अन्य भागों में पहुँची तो समस्त भारतीयों में असाधारण आक्रोश उत्पन्न हो गया। कोई भी स्वाभिमानी इन निर्मम अत्याचारों को आँख मूँद कर नहीं देख सकता था। गवर्नर जनरल की कार्यकारिणी परिषद से भारतीय सदस्य शंकरन नायर ने मार्शल लॉ के विरुद्ध त्याग पत्र दे दिया। रवीन्द्रनाथ टैगोर ने भी पंजाब की बर्बर घटनाओं से विक्षुब्ध होकर अपनी ''सर'' की उपाधि लौटा दी। इस घटना की जाँच हेतु गठित 'हंटर समिति' की कार्यवाही से सभी राष्ट्रवादी बहुत क्षुब्ध थे। गांधीजी ने देखा कि पूरा माहौल हिंसा की लपेट में है, तो उन्होंने आंदोलन वापस ले लिया।

सन 1919 ई0 में अमृतसर में आयोजित कांग्रेस के अधिवेशन में देश की मनःस्थिति की झलक मिली। चितरंजनदास मांटफोर्ड सुधारों को स्वीकार करने के विरुद्ध थे लेकिन तिलक चाहते थे कि अनुक्रियात्मक सहयोग दिया जाए। अंत में एक समझौता हुआ और कांग्रेस इस बात के लिए तैयार हो गई कि सुधारों को इस तरह लागू किया जाए ताकि एक लोकप्रिय सरकार की शीघ्र स्थापना हो सके।

असहयोग आन्दोलन– इस वक्त गांधीजी धीरे–धीरे उस खिलाफत आंदोलन में खींचे जा रहे थे जिसके मंच से उन्हें शीघ्र ही सरकार से असहयोग करने की घोषणा करनी थी। जब वह दक्षिण अफ्रीका में थे, तभी से उनके मन में हिन्दू– मुस्लिम एकता को लेकर दिलचस्पी पैदा हो गई थी। उन्होंने अली बंधुओं से सम्पर्क स्थापित किया था और वे मानते थे कि खिलाफत की माँग न्यायोचित थी।

उनके लिए ''खिलाफत आंदोलन हिंदुओं और मुसलमानों को एकता में बाँधने का एक ऐसा सुअवसर था, जो सैंकड़ों वर्षों में नहीं आएगा।'' नवम्बर, 1919 में गांधीजी खिलाफत सम्मेलन के अध्यक्ष चुने गये। सम्मेलन ने मुसलमानों से कहा कि वे मित्र राष्ट्रों की विजय के उपलक्ष्य में आयोजित सार्वजनिक उत्सवों में भाग न लें। घोषणा की गई कि यदि ब्रिटेन ने तुर्की के साथ न्याय नहीं किया तो बहिष्कार और असहयोग शुरू होगा। अमृतसर कांग्रेस और मुस्लिम लीग ने आन्दोलन को समर्थन दिया। गांधीजी ने सत्याग्रह आन्दोलन करने का फैसला किया। असहयोग का यह कार्यक्रम 1 अगस्त, 1920 को शुरू किया गया।

इसकी सफलता के लिए कांग्रेस का सहयोग अनिवार्य था। गांधीजी की अपील ने नरमपंथी और उग्रपंथी दोनों ही वर्गों के नेताओं को आकर्षित किया था क्योंकि उन्होंने नरमपंथियों के साम्राज्य के अन्तर्गत स्वराज के लक्ष्य को उग्रपंथियों के असहयोग के माध्यम से प्राप्त करने के लक्ष्य से मिला दिया था। यहाँ तक कि क्रांतिकारी राष्ट्रवादियों ने भी उन्हें एक अवसर देना चाहा।

अंहिसात्मक असहयोग की नयी योजना कांग्रेस ने सितम्बर, 1920 में कलकत्ता के अपने विशेष अधिवेशन में स्वीकार की। कलकत्ता अधिवेशन के प्रस्ताव में ऐलान किया गया कि ''महात्मा गाँधी ने जो उत्तरोत्तर बढ़ने वाला अहिंसात्मक असहयोग आन्दोलन आरम्भ किया है, वह तब तक जारी रहेगा जब तक कि उक्त अन्याय की बातों का निराकरण नहीं किया जाता और स्वराज नहीं कायम होता।'' असहयोग का यह आन्दोलन कई मंजिलों से होकर बढ़ना था। इसकी शुरूआत सरकार की दी हुई उपाधियों को त्यागने और

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

तीन तरह के बहिष्कार से होने वाला था। तीन तरह के बहिष्कार में धरना–सभाओं का, अदालतों तथा स्कूलों–कॉलेजों का बहिष्कार शामिल था। उसके साथ ही ''हर घर में फिर चरखा और करघा चालू करने'' की बात थी। आन्दोलन की अंतिम अवस्था में करबन्दी आरम्भ करने की योजना थी, पर यह निश्चित नहीं था कि यह समय कब आएगा। अदालतों में वकीलों ने काम का बहिष्कार किया। दिसम्बर, 1920 में कांग्रेस का वार्षिक अधिवेशन नागपुर में हुआ। वहाँ लगभग एकमत से नया कार्यक्रम पास हो गया। इसके पहले कांग्रेस का लक्ष्य साम्राज्य के अन्दर रहते हुए औपनिवेशिक स्वशासन प्राप्त करना था। अब उसे बदलकर ''शांतिपूर्ण उपायों से स्वराज प्राप्त करना'' कांग्रेस का लक्ष्य बना दिया गया।

नागपुर अधिवेशन में कांग्रेस संगठन को नया संविधान देकर उसके ढाँचे को व्यवस्थित किया। कांग्रेस को एक ठोस और प्रभावकारी राजनीतिक संगठन में बदल दिया गया जिसमें 15 सदस्यों की एक कार्यकारिणी समिति, 350 सदस्यों की एक अखिल भारतीय समिति और ऐसी प्रांतीय समितियों की व्यवस्था हुई जिनका सम्बन्ध जिलों से लेकर कस्बों, तहसीलों और गांवों तक हो गया। कार्यकारिणी समिति को ऐसा समन्वित आकार दिया जाना था जिसे बारहों महीने सक्रिय रहना था। आमतौर पर उसके फैसलों की समीक्षा करने और उसके निर्णयों को बदल देने तक के अधिकार थे। प्रांतीय समितियों का पुनः संगठन भाषायी आधार पर हुआ था। ये समितियाँ हर प्रदेश के लिए अलग–अलग थीं। इसी क्रम में गांव के ऊपर क्षेत्र, तहसील और फिर जिले के लिए भी इकाइयां बनती थी। कांग्रेस के वार्षिक अधिवेशनों में शामिल होने वाले प्रतिनिधियों का चुनाव सदस्यता के आधार पर किया जाना था, यानि 50 हजार सदस्यों पर एक प्रतिनिधि। इस व्यवस्था से कांग्रेस प्रतिनिधि बहुल संस्था बन गई क्योंकि सदस्यता का वार्षिक चंदा केवल 25 पैसा था। अतः इसके सदस्यों की संख्या में दिन दूनी और रात चौगुनी वृद्धि हुई। हालाँकि यह सदस्यता भी आवश्यक नहीं थी। सदस्यता के लिए कांग्रेस के लक्ष्यों और सिद्धान्तों की स्वीकृति पर्याप्त थी। इसकी वजह से यह दल भारत के लाखों–लाख गरीब लोगों तक पहुँच गया। आयु सीमा को घटाकर 18 वर्ष कर देने के बाद इसमें और तरुणाई आ गई। सन 1923 ई. तक ग्रामीण सदस्यों की संख्या शहरी क्षेत्रों के सदस्यों की संख्या से दुगुनी हो गई।

आधारभूत परिवर्तन न केवल दल की सामाजिक बनावट बल्कि उसके दृष्टिकोण और नीतियों में भी किया गया। सदस्यता अब केवल एक निष्क्रिय काम न होकर एक जीवंत प्रतिबद्धता बन गई थी। कांग्रेस राजनीतिक समाजीकरण का एक शस्त्र बन गई। इसने खादी, छुआछूत निवारण, मद्य निषेघ और राष्ट्रीय शिक्षा के काम हाथ में लिये। हिन्दी और अन्य भारतीय भाषाओं के प्रयोग ने शिक्षितों और आम जनता के बीच की दीवार को तोड़ दिया। एक तिलक स्वराज कोष की स्थापना हुई जिसमें 6 महीनों के भीतर एक करोड़ से अधिक रूपये इकठ्ठा हो गये। इसके कारण संगठन वित्तीय मामलों में स्थिर हो गया। इस प्रकार जन समर्थन की नींव पर खड़े एक धर्मनिरपेक्ष दल ने गांधीजी के नेतृत्व में एक अद्भुत अस्त्र से साम्राज्यवादियों से संघर्ष करने का फैसला किया।

जल्द से जल्द स्वराज प्राप्त करने के लिए कांग्रेस ने सरकार के खिलाफ संघर्ष चलाने का जो नया कार्यक्रम अपनाया, उससे जन– आंदोलन बड़ी तेजी से आगे बढ़ चला। गाँधीजी ने स्पष्ट शब्दों में यह भविष्यवाणी की थी कि स्वराज एक वर्ष के अन्दर मिल जाएगा। यहाँ तक कि उसके लिए उन्होंने एक तारीख भी निश्चित कर दी थी। 31 दिसम्बर, 1921 से पहले पहले स्वराज मिल जाने वाला था। बात यहाँ तक बढ़ गई थी कि सितम्बर, 1921 में गाँधीजी ने एक सम्मेलन में कह डाला कि ''साल खत्म होने के पहले–पहले स्वराज प्राप्त कर लेने का मुझे इतना पक्का विश्वास है कि बिना स्वराज लिये मैं 31 दिसम्बर के बाद जीवित रहने की कल्पना नहीं कर सकता।''

कांग्रेस के सभी उम्मीदवारों द्वारा चुनावों से अपने नाम वापस लेने के बाद वकीलों से अदालतों का और

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

जनता से शिक्षण सँस्थाओ, विदेशी कपड़ों और शराब की दुकानों का बहिष्कार करने पर जोर दिया गया। बहुत बड़ी संख्या में छात्रों ने अपने स्कूल कॉलेज छोड़ दिये, शिक्षकों ने त्यागपत्र दे दिये। जामिया मिलिया इस्लामिया और काशी, बिहार और गुजरात विद्यापीठ जैसे राष्ट्रीय शिक्षण संस्थानों की स्थापना हुई। आचार्य नरेन्द्र देव, राजेन्द्र प्रसाद, डा0 जाकिर हुसैन और सुभाषचन्द्र बोस ने इन राष्ट्रीय विश्वविद्यालयों में प्राध्यापन का कार्य किया। 30 सितम्बर, 1921 तक विदेशी कपड़ों के पूर्ण बहिष्कार का काम पूरा कर दिया जाना था। शताब्दी के पहले दशक में स्वदेशी आंदोलन के दौरान धरनों और सार्वजनिक स्थानों पर विदेशी वस्तुओं की होली जलाने की घटनाओं की पुनरावृत्ति होनी थी। छात्र समुदाय को स्वंयसेवकों के रूप में संगठित किया गया। उन्होंने राष्ट्रीय मसले के प्रचार, दान की रकम के एकत्रण, अंग्रेजों का साथ देने वाले के विरुद्ध प्रदर्शन, पंच निर्णयों वाली अदालतों का संचालन और विदेशी वस्तुएँ बेचने वाली दुकानों के सामने धरना देने के काम किये।

आंदोलन को वेल्स के राजकुमार के आगमन के बहिष्कार में असाधरण सफलता मिली। बम्बई में हड़ताल हुई और समुद्र तट पर एक सभा की गई जिसमें गांधीजी ने विदेशी कपड़ों की होली जलाई लेकिन भीड़ अनुशासनहीन हो गई। पुलिस ने गोली चलाई। कलकत्ता में खिलाफत वालों और पुलिस के बीच के एक संघर्ष के अलावा हड़ताल पूरी तरह सफल रही।

सरकार बहुत संकट में आ गई थी और उसने दमनकारी कदम उठाने का फैसला किया। कांग्रेस और खिलाफत स्वंयसेवकों के संगठन को गैर कानूनी घोषित कर दिया गया। जनसभाओं और जुलूसों पर प्रतिबन्ध लग गया। यह संगठन और भाषण की स्वतंत्रता को एक चुनौती थी क्योंकि इसके बिना कोई भी राजनीतिक आंदोलन चल ही नहीं सकता था। चितरंजन दास ने चुनौती को स्वीकार करके आदेश की अवज्ञा करते हुए कहा ''मै महसूस करता हूँ कि मेरी कलाइयों में हथकड़ियाँ पड़ी है और मेरे शरीर पर लोहे की जंजीर का वजन है। पूरा देश ही एक लंबा–चौडा कारागार है। इससे क्या फर्क पड़ता है कि मै जीवित हूँ या मर गया हूँ। उनकी पत्नी और पुत्र की गिरफ्तारी के बाद हजारों कार्यकर्ताओं ने अपना नाम लिखाना शुरू किया।

सन 1921 ई0 के अंत तक गांधीजी को छोड़कर शेष सभी प्रमुख नेता जेल के सींखचों के भीतर थे। कार्यकारिणी ने हर प्रांत को कुछ खास शर्तों पर नागरिक अवज्ञा आंदोलन शुरू करने की अनुमति दी थी लेकिन मोपला के विद्रोह और बम्बई के दंगों की वजह से गाँधी जी बेचैन हो उठे। वह धीरे–धीरे बढ़ना चाहते थे। उन्होंने आंदोलन को शहरों से, जहाँ अहिंसा असफल हो गई थी, हटाकर गाँवों में तेज करने का फैसला किया। अहमदाबाद कांग्रेस ने यह दृढ़ निश्चय प्रकट किया कि वह अहिंसात्मक असहयोग आंदोलन को और भी जोर से चलाएगी और उस वक्त तक जारी रखेगी जब तक कि भारत सरकार की बागडोर जनता के हाथों में न आ जाए। इस उद्देश्य की सिद्धि के लिए सारे अधिकार गाँधी जी को दे दिए गए। गांधीजी ने 1 फरवरी, 1922 को वाइसराय को अपनी प्रसिद्ध चुनौती दी। देश के सामने सिवाय इसके और कोई चारा नहीं है कि वह अपनी माँगों को पूरा कराने के लिए अहिंसा का कोई तरीका अपनाये।

घोषणा की गई कि गांधीजी गुजरात के बारदोली में इसकी आजमाइश करेंगे लेकिन इसके पहले कि बारदोली में नागरिक अवज्ञा का एक व्यापक जन आंदोलन शुरू किया जाता, 5 फरवरी को उत्तर प्रदेश में चोरी चौरा नामक जगह पर एक घटना घट गई। पुलिस के अंधाधुंध गोली चलाने के जवाब में कुछ किसानों ने पुलिस थाने में आग लगा दी जिससे 22 सिपाहियों की मृत्यु हो गई। बारदोली में शीघ्रता में कार्यकारिणी की बैठक बुलाई गई। गांधीजी के जोर देने पर 12 फरवरी को नागरिक अवज्ञा स्थगित करके एक रचनात्मक कार्यक्रम अपनाने पर सहमति हुई। बारदोली के फैसले से बहुत से राष्ट्रीय नेताओं को आघात लगा। सुभाष ने

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

उसे ''राष्ट्रीय आपदा'' कहा। गांधीजी को अपने अनुयायियों के बीच फैसलों का औचित्य सिद्ध करने में बड़ी मुश्किल का सामना करना पड़ा। उन्होंने नेहरू को यह विश्वास दिलाया कि ''यदि स्थगन न हुआ होता तो हम लोगों ने अनिवार्यतः अहिंसक के बजाय एक हिंसक आंदोलन का नेतृत्व किया होता। पीछे हट जाने के इस कदम से हमारा संघर्ष समृद्ध होगा। हम अपने लंगरस्थल पर वापस लौट आये हैं।''

10 मार्च, 1922 को गांधीजी को गिरफ्तार किया गया और उन पर राज्य के विरुद्ध द्वेष फैलाने का अभियोग लगाया गया। गांधीजी ने अपने कार्य का औचित्य सिद्ध करने के सिलसिले में जो तर्क दिए, उनकी वजह से वह मुकदमा ऐतिहासिक हो गया क्योंकि उन्होंने स्वंय अभियोग स्वीकार कर लिया था। उन्होंने कहा ''न चाहते हुए भी मैं इस नतीजे पर पहुंचा कि ब्रिटेन के संबंध ने भारत को राजनीतिक और आर्थिक दृष्टि से इतना असहाय बना दिया जितना वह पहले कभी नहीं था। शहरों के रहने वाले नहीं जानते हैं कि किस तरह आधा पेट भोजन करने वाली जनता धीरे–धीरे मृत्यु के निकट पहुँच रही है। वे नहीं महसूस करते कि कानून द्वारा भारत में स्थापित ब्रितानी सरकार जनता का शोषण करने के लिए ही चल रही है। आँकड़े का कोई कुतर्क, कोई बाजीगरी इस प्रमाण को गलत सिद्ध नहीं कर सकती कि बहुत से गाँवों में नरकंकाल पड़े हुए हैं। सबसे बड़ा दुर्भाग्य यह है कि प्रशासन से सम्बद्ध अंग्रेज या उनके भारतीय सहयोगी नहीं जानते कि उनसे यह अपराध कराया जा रहा है, जिसके बारे में मैंने बताने की कोशिश की है। मुझे विश्वास है कि बहुत से अंग्रेज और भारतीय अधिकारी ईमानदारीपूर्वक यह समझते हैं कि वे संसार की एक सर्वोत्कृष्ट प्रणाली को लागू कर रहे हैं और भारत सुस्थिर ढंग से लेकिन धीरे–धीरे प्रगति कर रहा है।

अपने वक्तव्य का समापन करते हुए उन्होंने कहा कि उनका विश्वास है कि बुराई से असहयोग करना वैसा ही फर्ज है जैसा अच्छाई से सहयोग। उन्होंने अदालत से माँग की कि कानून के अन्तर्गत जिसे जान–बूझ कर किया गया अपराध माना जाता है उसके लिए बड़ी से बड़ी जो भी सजा दी जा सकती हो, मुझे दी जाए। मुझे यही एक नागरिक का सबसे बड़ा कर्त्तव्य लगता है।''

मुकदमे की सुनवायी करने वाले न्यायाधीश ने स्वीकार करते हुए कहा ''यह तथ्य है कि आप अपने देश के लाखों–लाख लोगों की निगाह में एक महान देशभक्त और नेता है लेकिन अदालत की निगाह में कानून तोड़ने और उसकी आत्मस्वीकृति करने वाले व्यक्ति गाँधी को 6 साल की जेल की सजा दी जाती है – वही सजा जो सन 1908 ई0 में लोकमान्य तिलक को दी गई थी।''

फिलहाल 12 फरवरी, 1922 को आन्दोलन में जो पड़ाव आया था वह अस्थायी साबित हुआ। मांटेग्यू और बरकेनहेड ने कहा था कि भारत दुनिया की सबसे शक्तिशाली सत्ता को चुनौती नहीं दे सकता और अगर चुनौती गई तो इसका उत्तर पूरी ताकत से दिया जाएगा। गाँधी ने आन्दोलन वापस लेने के बाद 23 फरवरी, 1922 को यंग इण्डिया में अपने लेख में इस चुनौती का उत्तर दिया कि अंग्रेजों को यह जान लेना चाहिए कि सन 1920 ई0 में छिड़ा संघर्ष अंतिम संघर्ष है, निर्णायक संघर्ष है, फैसला होकर रहेगा, चाहे एक महीना लग जाए या एक साल लग जाए। कई महीने लग जाएं या कई साल लग जाएं। अंग्रेजी हुकूमत चाहे उतना ही दमन करे जितना सन 1857 ई0 के विद्रोह के समय किया था, फैसला होकर रहेगा।

सविनय अवज्ञा आन्दोलन – सन 1922 ई0 में जब असहयोग आन्दोलन वापस ले लिया गया तो बहुत बड़े पैमाने पर निराशा फैली। जनता में पस्ती आ गई। सिद्धान्त, पार्टियाँ और राजनीति हर चीज टूटती बिखरती दिखाई देने लगी। राष्ट्रीय आन्दोलन की पस्ती के इस काल में साम्प्रदायिक झगड़ों की जहरीली हवा देश में चलने लगी। मुस्लिम लीग ने फिर अपने को कांग्रेस से अलग कर लिया। उसके जवाब में हिन्दू महासभा संकुचित और प्रतिक्रियावादी ढंग से प्रचार करने लगी। कांग्रेस के नेताओं के एक हिस्से ने जिसका प्रतिनिधित्व देशबन्धु चितंरजनदास और मोतीलाल नेहरू करते थे, बारदोली के फैसले के बाद एक नया मोड़

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

लेने की कोशिश की। इनका सुझाव था कि कांग्रेसी नेताओं को चुनाव लड़ कर विधान परिषदों में प्रवेश करना चाहिए और वहाँ पर अंग्रेजी सरकार के अलोकतांत्रिक और दमनकारी चरित्र का पर्दाफाश करना चाहिए। इन नेताओं ने कांग्रेस के कार्यक्रम में परिवर्तन की माँग की थी इसलिए परिवर्तनवादी और अपरिवर्तनवादी नेताओं के आपस में मतभेद थे। परिवर्तनवादी नेताओं ने स्वराज पार्टी भी बना डाली लेकिन उन्होंने अपने मतभेदों से राष्ट्रीय आन्दोलन की एकता पर कोई असर नहीं पड़ने दिया। दोनों कांग्रेस के भीतर ही रहे और अपनी–अपनी गतिविधियाँ करते हुए दोनों ने एक–दूसरे को यथासंभव सहयोग दिया। जब संघर्ष का समय आया तो दोनों एक बार फिर इकठ्ठे हो गये।

22 नवम्बर, 1927 को लंदन से ब्रितानी मंत्रिमण्डल ने घोषणा की कि नियत समय से 2 साल पहले ही एक शाही आयोग की नियुक्ति का निर्णय किया गया है जो यह समीक्षा करेगा कि भारत और अधिक सुधारों तथा संसदीय जनतंत्र के योग्य हुआ है या नहीं। आयोग के अध्यक्ष हुए एक अंग्रेज, सर जान साइमन और इस प्रकार आम तौर पर उसे साइमन आयोग की संज्ञा दी गई। उसके सातों सदस्य अंग्रेज थे।

सारे भारत में इसकी तत्काल और व्यापक प्रतिक्रिया हुई कि जिस आयोग को भारत का राजनीतिक भविष्य निश्चित करना हो, उसकी सदस्यता के लिए एक भी भारतीय को काबिल नहीं माना गया। यह भारत के लिए अपमानजनक बात थी कि इसमें कोई भी भारतीय नहीं था।

कांग्रेस के अन्दर एक नया गरम दल बन गया। राष्ट्रीय आन्दोलन में एक नया वामपक्ष प्रकट होने लगा। सन 1927 ई0 के अन्त में जवाहरलाल नेहरू डेढ़ साल तक यूरोप का दौरा करने के बाद भारत लौटे। उन्होंने यूरोप में समाजवादी क्षेत्रों और उनके विचारों से सम्पर्क कायम किया था। सन 1927 ई0 के आखिर में कांग्रेस का मद्रास अधिवेशन हुआ। इसमें भी नई वामपंथी प्रवृत्तियाँ दिखाई दीं और यह स्पष्ट हो गया कि खासकर नौजवानों में उनका बहुत असर हुआ है। मद्रास अधिवेशन ने सर्वसम्मति से जवाहरलाल नेहरू द्वारा प्रस्तुत एवं सुभाषचन्द्र बोस द्वारा समर्थित एक प्रस्ताव पास किया जिसमें राष्ट्रीय आन्दोलन का लक्ष्य पूर्ण स्वाधीनता घोषित किया गया था। इसी अधिवेशन में साइमन कमीशन का बहिष्कार करने का निश्चय हुआ, साथ ही यह भी फैसला किया गया कि नये विधान की सरकारी योजना के मुकाबले में भारतीय योजना बनाने के लिए एक सर्वदलीय सम्मेलन हो और उसमें कांग्रेस भाग ले। कांग्रेस ने साम्राज्यवाद विरोधी लीग में शामिल होना स्वीकार किया। नेहरू और सुभाष बोस युवाओं के और कांग्रेस के अन्दर बढ़ती हुई वामपंथी प्रवृत्तियों के मुख्य नेता समझे जाते थे। वे कांग्रेस के सैक्रेटरी नियुक्त कर दिए गए।

3 जनवरी, 1928 को जैसे ही साइमन और उनके साथी मुम्बई में उतरे, कार्यवाही शुरू हो गई। उस दिन सभी प्रमुख नगरों तथा कस्बों में हड़ताल रही तथा लोगों ने सामूहिक प्रदर्शनों में हिस्सा लिया, काले झंडे दिखाए गए।

साइमन आयोग की नियुक्ति करने वाले अनुदारपंथी राज्य सचिव लार्ड बिरकेनहेड भी लगातार यह राग अलाप रहे थे कि भारतीय लोग संवैधानिक सुधार के लिए सर्वसम्मति से कोई ठोस प्रस्ताव बनाने में असमर्थ हैं, ऐसा प्रस्ताव जिसको सभी भारतीयों का व्यापक राजनीतिक समर्थन प्राप्त हो। इस चुनौती को भी स्वीकार किया गया और एक योजना को अंतिम रूप देने के लिए फरवरी, मई और अगस्त 1928 में सर्वदलीय अधिवेशन आयोजित किये गये। इसको मोतीलाल नेहरू के नाम पर नेहरू रिपोर्ट नाम से बाद में जाना गया। वही इस रिपोर्ट के प्रमुख लेखक थे। इसमें कहा गया कि भारतीय सरकार को 'डोमिनियन स्टेटस (अधिराज्य प्रस्थिति)'' की हैसियत रखने वाली सरकार होना चाहिए। इसमें साम्प्रदायिक आधार पर अलग निर्वाचक मण्डल की माँग को अस्वीकार किया गया था जिसके आधार पर इसमें पूर्व के संवैधानिक सुधार किए गए थे।

दिसम्बर, 1928 में कांग्रेस के कलकत्ता अधिवेशन में नेहरू रिपोर्ट को स्वीकार कराने में गांधीजी को

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

काफी दिक्कत हुई। उन्होंने जो प्रस्ताव बनाया था उसमें कहा गया था कि इस रिपोर्ट का मतलब यह नहीं है कि पूर्ण स्वतंत्रता का लक्ष्य छोड़ दिया गया है और अगर सरकार 31 दिसम्बर, 1929 तक यह रिपोर्ट मंजूर नहीं कर लेती है तो कांग्रेस एक बार फिर अहिंसात्मक असहयोग आन्दोलन छेड़ेगी और इस बार इसे कर बन्दी से प्रारम्भ करेगी।

कांग्रेस का होने वाला अधिवेशन बहुत ही महत्त्वपूर्ण था। आगामी वर्ष में संघर्ष छेड़ा जाने वाला था। इसलिए कांग्रेस का अध्यक्ष गांधीजी को चुना गया लेकिन उन्होंने अपना नाम वापस ले लिया और अपनी जगह इण्डिपेन्डेंस लीग तथा युवकों के नेता जवाहरलाल नेहरू, जो समाजवाद से सहानुभूति प्रकट कर चुके थे नामजद कर दिया। उस समय अपनी पसन्द के हक में दलील देते हुए गांधीजी ने नेहरू के बारे में कहा कि देश प्रेम में कोई भी उनसे आगे नहीं बढ़ सकता। वह वीर और भावुक हैं और इस समय इन गुणों की बड़ी आवश्यकता है। लेकिन संघर्षों में दृढ़ता और भावुकता का परिचय देने के साथ–साथ उनमें एक राजनीतिज्ञ के विवेक से काम लेने की क्षमता भी है। वह अनुशासन प्रेमी है और अपने कार्यों द्वारा यह सिद्ध कर चुके हैं कि उनमें असहमत होते हुए भी फैसलों को मानने की क्षमता है। वह विन्रम स्वभाव के हैं और इतने व्यावहारिक भी हैं कि कभी हवा में नहीं उड़ते। उनके हाथों में देश बिल्कुल सुरक्षित है।

सन 1929 के आखिर में लाहौर अधिवेशन हुआ। यह ऐलान किया गया कि नेहरू रिपोर्ट का समय बीत गया है। आगे से कांग्रेस का ध्येय पूर्ण स्वराज रहेगा जवाहरलाल नेहरू का अध्यक्षीय भाषण आन्दोलन के लिए हरकत में आने का प्रेरक आह्वान था। 'विदेशी शासन से अपने देश को मुक्त करने के लिए अब हमें आंदोलन करना है और साथियों आप लोग और देश के सभी लोग इसमें हाथ बँटाने के लिए सादर आमंत्रित है।' नेहरू ने यह बात साफ की कि मुक्ति का मतलब विदेशी शासन को उखाड़ फेंकना भर नहीं है। मुझे साफ–साफ स्वीकार कर लेना चाहिए कि मैं एक समाजवादी हूँ, गणतन्त्रवादी हूँ।

आधी रात को जब पुराना साल खत्म हुआ और सन 1930 प्रारम्भ हुआ तो भारतीय स्वतंत्रता का तिरंगा झंडा फहराया गया। 26 जनवरी, 1930 को सारे देश में पहला स्वतंत्रता दिवस मनाया गया। हर जगह विराट प्रदर्शन और सभाएँ हुईं जिनमें पूर्ण स्वतंत्रता के लिए संघर्ष करने की प्रतिज्ञा की गई। जनता ने घोषणा की कि अंग्रेजी राज को अब और मानना मनुष्य और भगवान के प्रति पाप करना है और अपना विश्वास प्रकट किया कि ''यदि हम सरकार से स्वेच्छापूर्वक सहयोग करना और उसे कर देना बन्द कर दें और उकसाए जाने पर भी हिंसा न करें तो यह अमानुषिक राज अवश्य ही खत्म हो जाएगा।

कांग्रेस की कार्यकारिणी की सन 1929 ई0 में हुई लाहौर कांग्रेस में यह अधिकार गाँधी जी को दिया गया था कि वह देश में सविनय अवज्ञा आन्दोलन छेड़ें। इस आन्दोलन में कर अदा न करना भी शामिल था। इसने विधानसभा के सदस्यों से विधायक पद से इस्तीफा देने का भी आह्वान किया था। सन 1930 ई0 के मध्य फरवरी में साबरमती आश्रम में कांग्रेस कार्यकारिणी समिति की बैठक हुई जिसमें गाँधी जी को इस बात का अधिकार दिया गया कि वे अपनी इच्छा से जब और जिस जगह से चाहे सविनय अवज्ञा आन्दोलन का शुभारम्भ कर सकते है। 31 जनवरी, 1930 को गाँधी द्वारा प्रस्तुत 11 सूत्री न्यूनतम माँगों को वाइस राय लार्ड इरविन ने अस्वीकार कर दिया। इसलिए अब सिर्फ एक ही रास्ता बचा था – सविनय अवज्ञा का।

सविनय अवज्ञा अभियान का नेतृत्व कर गाँधी जी ने अपनी राजनीतिक कुशलता का अपूर्व परिचय दिया। उन्होंने इस आन्दोलन का प्रारम्भ नमक पर कर हटाने को लेकर डांडी यात्रा से किया। गुजरात के समुद्र तट पर स्थित ग्राम डांडी में गाँधी द्वारा नमक कानून को तोड़ने का उदाहरण देश में सर्वत्र अनुकरणीय बन गया। अपने निर्धारित स्थान को पहुँचने के लिए गांधीजी ने अपने साथियों के साथ पैदल 200 मील यात्रा की और 6 अप्रैल, 1930 को उन्होंने वहाँ नमक बनाकर नमक कानून को तोड़ा। इसका चामत्कारिक प्रभाव

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

पड़ा और देश के हजारों लोगों ने नमक –कानून की अवज्ञा कर नमक बनाना आरम्भ कर दिया। शीघ्र ही यह एक महान आंदोलन बन गया। हजारों महिलाएँ घरों की चारदीवारियों से बाहर निकलकर शराब की दुकानों पर धरना देने लगीं। इसके लिए उन्हें जेल भी जाना पड़ा। स्वदेशी वस्त्र को प्रोत्साहन देने हेतु विदेशी वस्त्र का बहिष्कार किया गया तथा उसकी सरे आम होली जलाई गई।

महात्मा गाँधी इस आन्दोलन के उक्त कार्यक्रमों को सीमाओं में ही रखना चाहते थे लेकिन यह शीघ्र ही इन सीमाओं को पार कर गया। इस समय विश्व में आर्थिक मंदी का दौर चल रहा था। भारत की आर्थिक अवस्था अत्यंत दयनीय हो गई थी। इस कारण भारत में बेरोजगारी का प्रकोप बढ़ रहा था। श्रमिकों ने हड़ताल करना आरम्भ कर दिया। विद्यार्थियों ने स्कूल व कॉलेज छोड़ कर आन्दोलन में सक्रिय सहयोग दिया। किसानों ने कर देना बंद कर दिया। सरकार ने किसानों को जमीन से बेदखल करना आरम्भ कर दिया। जनता में आन्दोलन के लिए ज्यों–ज्यों उत्साह बढ़ रहा था उधर सरकार का दमन चक्र दिन पर दिन क्रूर होता जा रहा था। सरकार ने नये नये अध्यादेश जारी किये। प्रदर्शनकारियों पर डंडे बरसाये गये। गोलियों से सत्याग्रहियों को भूना गया। उनकी सम्पति सरकार ने जब्त कर ली। हजारों लोग जेलों में बंद कर दिए गए। उत्तर पश्चिमी सीमान्त प्रदेश के पठानों ने खान अब्दुल गफ्फार खां के नेतृत्व में सरकार के विरुद्ध आन्दोलन किया।

सत्याग्रहियों पर ब्रिटिश सरकार के कठोर एवं क्रूर अत्याचारों से महात्मा गाँधी का दिल दहल गया। उन्होंने गर्वनर जनरल को इस आशय का एक पत्र लिखा परन्तु उसका कोई असर नहीं पड़ा। जब महात्मा गाँधी ने धारासणा के नमक कारखानों पर अधिकार करने की घोषणा की तो 5 मई, 1930 को उन्हें बंदी बना लिया गया। उनकी गिरफ्तारी की उग्र प्रतिक्रिया हुई। अधिकांश नगरों में हड़ताल रखी गई। बम्बई के 50000 मजदूर काम छोड़ कर सड़कों पर आ गये। मिल मजदूरों की हड़ताल की खबर फैलते ही रेलवे कारखाने के श्रमिक हड़ताल पर आ गये। बम्बई के औद्योगिक नगर शोलापुर में आन्दोलन ने भयंकर रूप धारण कर लिया।

सन 1930 ई0 का सविनय अवज्ञा आन्दोलन इतना व्यापक तथा उग्र होगा इसका अनुमान ब्रिटिश सरकार भी नहीं लगा सकी थी। आन्दोलन के करबन्दी, लामबन्दी, शराबबन्दी, नमक–सत्याग्रह, गांजा–भांग और विदेशी वस्त्रों का बहिष्कार, सरकारी स्कूल व कॉलेजों एवं अदालतों का बायकाट आदि कई रूप इस आन्दोलन ने धारण किये। संक्षेप में हम यह कह सकते हैं कि यह आन्दोलन आशातीत रूप से सफल रहा। जुलाई के प्रारम्भ तक भारत का कोई प्रांत ऐसा नहीं बचा था। जहाँ इस आंदोलन का असर न पड़ा हो। असहयोग आन्दोलन की तुलना में इस आन्दोलन को महिला वर्ग का अधिक सहयोग मिला। इस आन्दोलन की दूसरी विशेषता यह रही कि इसमें किसानों ने अपना सक्रिय योगदान दिया। बिहार और गुजरात में किसान इस आन्दोलन में अग्रणी रहे।

इस व्यापक आन्दोलन को कुचलने के लिए ब्रिटिश सरकार ने हर संभव उपाय किये पर वह असफल रही। इसी अन्तराल में गोलमेज सभा की योजनाएँ प्रगति करती गई। ब्रिटिश सरकार गाँधी और कांग्रेस का सहयोग पाने को आतुर थी क्योंकि ब्रिटिश सरकार अब इस निष्कर्ष पर आ पहुँची थी कि बिना कांग्रेस के सहयोग के कोई संविधान संबधी योजना सफल नहीं हो सकती। अतः गवर्नर –जनरल ने तेज बहादुर सप्रु के माध्यम से गांधीजी के माध्यम से कांग्रेस के साथ समझौते के प्रयास आरम्भ किये।

गाँधी – इरविन समझौता – प्रथम गोलमेज सम्मेलन असफल हो गया। अतः इरविन ने गाँधीजी को 19 फरवरी 1931 को मिलने बुलाया। उनकी वार्ता 15 दिन तक चलती रही। इस वार्ता के परिणामस्वरूप कांग्रेस कार्य समिति पर लगाया गया प्रतिबंध उठा लिया गया। 26 फरवरी को गाँधीजी सहित समिति के सभी

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

सदस्य बिना शर्त रिहा कर दिये गये। 5 मार्च 1931 को गांधीजी और इरविन के मध्य एक समझौता हुआ।

समझौते के प्रावधान इस प्रकार थे–

1. ब्रिटिश सरकार ने सभी अध्यादेशों तथा अभियोगों को वापस ले लिया तथा हिंसात्मक गतिविधियों में लिप्त के अलावा सभी सत्याग्रही मुक्त कर दिए गए।
2. सत्याग्रहियों की जब्त सम्पति वापस लौटा दी गई।
3. महात्मा गाँधी ने सविनय अवज्ञा आन्दोलन स्थगित कर दिया।
4. दूसरी गोलमेज सभा में कांग्रेस ने सम्मिलित होना स्वीकार कर लिया।
5. ब्रिटिश सरकार ने शराब की दुकानों व विदेशी वस्त्रों की दुकानों पर शांतिपूर्वक धरने का कार्यक्रम स्वीकार कर लिया।
6. समुद्र किनारे के समीप बसने वाले व्यक्तियों को बिना टैक्स दिए नमक बनाने की अनुमति दे दी गई।

उपर्युक्त प्रावधानों से ज्ञात होता है कि महात्मा गाँधी अपने उद्देश्यों की प्राप्ति में बहुत हद तक सफल रहे परन्तु गाँधी जी ने आन्दोलन स्थगित कर दिया।

द्वितीय गोलमेज सभा में गाँधी जी ने साम्प्रदायिक एकता के लिए प्रशंसनीय प्रयास किये परन्तु साम्राज्यवादी ब्रिटिश सरकार ने उन्हें कोई सफलता नहीं मिलने दी। अतः गांधीजी दिसम्बर 1931 में स्वदेश लौट आये और जून, 1932 में दूसरी गोलमेज सभा स्थगित कर दी गई। भारत लौटते हुए उन्होंने देखा कि उनके दिल्ली समझौते का स्पष्ट उल्लंघन हो रहा था। भारत के नये वाइसराय विलिंगडन ने अपना दमन–चक्र आरम्भ कर दिया। वाइसराय तथा भारत सचिव ने महात्मा गाँधी को पुनः बंदी बनाकर अपनी अनुदार नीति का परिचय दिया। वाइसराय ने कांग्रेस का दमन करने हेतु 4 जनवरी, 1932 को चार अध्यादेश और जारी कर दिए। प्रदर्शनकारियों पर गोलियाँ चलाना आम बात हो गई। सामूहिक जुर्माने किए गए। हजारों स्त्री पुरूष पुनः जेलों में ठूँस दिए गए। अतः सन, 1932 का आन्दोलन भी समस्त देश में फैल गया। इसमें आमतौर पर लोगों ने हिंसा का सहारा नहीं लिया। सरकार ने समझा था कि यह आन्दोलन 6 हफ्ते में समाप्त हो जायेगा। परन्तु वह कई महीनों तक चलता रहा। उधर अगस्त, 1932 में मैकडोनाल्ड ने साम्प्रदायिक पंचाट की घोषणा कर दी। गांधीजी ने ब्रिटेन के प्रधानमंत्री को पत्र लिखकर सूचना दी कि यदि दलित वर्गों के पृथक निर्वाचन को समाप्त नहीं किया गया तो वे 30 सितम्बर से आमरण अनशन आरम्भ कर देंगे। सरकार पर इसका कोई असर नहीं हुआ। परन्तु दलित वर्ग के नेता डा0 अम्बेडकर ने दलित वर्ग के पृथक निर्वाचन को वापिस कराने का वायदा कर गांधीजी का अनशन तुड़वाया। यह सन 1932 ई0 का पूना पैक्ट कहलाता है। 8 मई, 1933 को उन्होंने पुनः 21 दिन का अनशन किया। वाइसराय से उन्होंने पुनः मिलने का प्रयास किया परन्तु उसने स्पष्ट कह दिया कि पहले आन्दोलन समाप्त करो। इस पर गाँधी जी ने जुलाई,

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

1933 में सामूहिक आन्दोलन समाप्त कर व्यक्तिगत सत्याग्रह करने की घोषणा की। इसके साथ ही कांग्रेस की समस्त संघर्ष समितियाँ समाप्त कर दी गई। इस पर भी अगस्त, 1933 में गांधीजी को पुनः बंदी बना लिया गया। अनशन करने पर जब उनका स्वास्थ्य बिगड़ने लगा तो सरकार ने 23 अगस्त को उन्हें बिना शर्त के रिहा कर दिया। मई, 1934 में कांग्रेस का अधिवेशन हुआ। इस अधिवेशन में आन्दोलन बिना शर्त के वापिस ले लिया गया। जून, 1934 में कांग्रेस पर से प्रतिबन्ध हटा लिया गया।

सविनय अवज्ञा आन्दोलन की उपलब्धियों को नहीं नकारा जा सकता। इस आन्दोलन से कुछ स्थायी लाभ भी हुए। समाज के विभिन्न वर्गों के लोगों ने प्रथम बार सामूहिक आन्दोलन में खुल कर भाग लिया। इस आन्दोलन के पीछे जनसाधारण ने अपनी अपूर्व श्रद्धा व निष्ठा का प्रदर्शन किया। क्रेसफोर्ड ने इसकी उपलब्धियों के संदर्भ में लिखा है ''गाँधीजी ने एक सौम्य तथा निष्क्रिय राष्ट्र को शताब्दियों की निद्रा से जगा दिया था।''

भारत छोड़ो आन्दोलन –

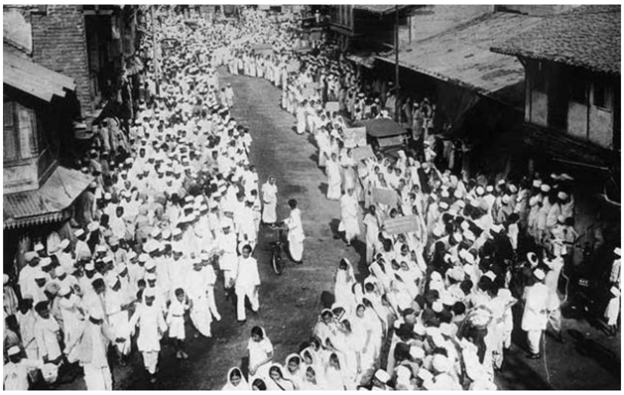

भारत छोड़ो आंदोलन

भारतीय इतिहास में 1942 ई0 का भारत छोड़ो आंदोलन एक महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है। इस क्रांति ने भारत में ब्रिटिश साम्राज्यवाद की नींव हिला दी और यह सिद्व कर दिया कि भारत पर अब अधिक समय तक ब्रिटिश आधिपत्य नहीं रहेगा। भारतीय अपनी स्वतत्रंता के लिए मर मिटने के लिए तैयार है।

भारत छोड़ो आंदोलन के कारण–

(i) 1942 में क्रिप्स योजना की असफलता के बाद भारतीय यह समझने लगे कि ब्रिटिश सरकार ने स्वतंत्रता का अध्याय बंद कर दिया और सरकार ने कठोर दमनकारी नीति अपनाई थी। इससे देश में नैराश्य और उत्साह–हीनता छा गई थी। इस स्थिति में कांग्रेस के समक्ष आंदोलन चलाने के सिवा कोई दूसरा उपाय नहीं था।

(ii) ब्रिटिश सरकार प्रारम्भ में द्वितीय विश्व युद्व में जापान का मुकाबला सफलतापूर्वक नहीं कर सकी। मलाया, सिंगापुर, बर्मा आदि देशों में ब्रिटिश फौजों को पीछे हटना पड़ा, जिससे भारतीयों को विश्वास हो गया कि ब्रिटेन भारत की रक्षा नहीं कर सकता। यदि इंग्लैण्ड भारत को आजाद कर देता है तो जापान भारत पर आक्रमण नहीं करेगा।

(iii) युद्व के नाम पर सरकार देश में साम्राज्यवाद का नाटक खेल रही थी। देश में भ्रष्टाचार और चोरबाजारी का बोलबाला था। इससे जनता में विदेशी सरकार के प्रति असंतोष फैला हुआ था। 27 जुलाई को ब्रिटिश सरकार ने लंदन से एक घोषणा की कि भारत को युद्व का अड्डा बनाया जाएगा और उसके लिए आवश्यक कार्यवाही की जाएगी। भारतीय नेता इससे बहुत क्षुब्ध हुए और इस घोषणा के लगभग बारह दिनों के बाद भारत छोड़ो आंदोलन शुरू हुआ।

कांग्रेस कार्य–समिति की वर्धा में 14 जुलाई, 1942 को बैठक हुई, जिसमें वर्धा प्रस्ताव द्वारा यह माँग की गई कि अंग्रेज भारत छोड़कर चले जाएँ। प्रस्ताव में यह भी कहा गया था कि जो परिस्थिति उत्पन्न हो गई है उसका समाधान केवल ब्रिटिश शासन का अंत होने से ही होगा। प्रस्ताव में बताया गया था कि इस उद्देश्य

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

की पूर्ति के लिए कांग्रेस एक व्यापक आंदोलन चलाएगी। 01 अगस्त, 1942 को इलाहबाद में तिलक दिवस के अवसर पर जवाहरलाल नेहरू ने अपने भाषण में कहा था, ''हम आग से खेलने जा रहे हैं, हम दुधारी तलवार प्रयुक्त करने जा रहे हैं, जिसकी चोट उलटे हमारे ऊपर भी पड़ सकती है, लेकिन हम विवश हैं।''

कांग्रेस कार्यकारिणी समिति की बैठक 07 और 08 अगस्त, 1942 को बंबई में हुई, जिसमें भारत छोड़ो प्रस्ताव पारित किया गया। प्रस्ताव पारित होने के बाद महात्मा गाँधी ने भाषण दिया। उन्होंने कहा, ''भारत में ब्रिटिश शासकों का रहना जापान को भारत पर आक्रमण के लिए आमंत्रण देना है। उनके भारत छोड़ने से यह आक्रमण हट जाएगा। भारत को ईश्वर के हाथों में छोड़ दो अथवा अराजकता पर भारत को छोड़ दो। उन्होंने स्पष्ट कह दिया था, ''मैं स्वतंत्रता का ज्यादा इंतजार नहीं कर सकता। मैं जिन्ना के हृदय–परिवर्तन की बाट नहीं देख सकता। ....यह मेरे जीवन का अंतिम संघर्ष है। '' महात्मा गाँधी ने कहा 'मैं आपको एक मंत्र दे रहा हूँ 'करो या मरो'। या तो हम इस प्रयास में देश को आजाद करवा लेगें या इस कार्य में हम मर मिटेगें।'

ब्रिटिश सरकार कार्यवाही के लिए तैयार थी। 08 अगस्त, 1942 की रात को भारत छोड़ो प्रस्ताव पारित हुआ था। सरकार ने शीघ्र ही नेताओं को गिरफ्तारी शुरू कर दी। 09 अगस्त को महात्मा गाँधी के साथ–साथ सभी नेताओं को गिरफ्तार कर लिया गया। महात्मा गाँधी को पूना के आगा खाँ पैलेस में नजरबंद रखा गया और अन्य नेताओं को अहमदनगर के किले में। नेताओं की गिरफ्तारी की बात गुप्त रखने की चेष्टा की गई, परंतु सरकार अपने उद्देश्य में सफल नहीं हो सकी। नेताओं की गिरफ्तारी की समाचार सारे देश में हवा की गति से फैल गया। सरकार ने कांग्रेस को अवैध संस्था घोषित कर दिया और कांग्रेस कार्यालयों पर पुलिस का पहरा बैठा दिया।

राष्ट्रीय नेताओं की गिरफ्तारी से देश में आंदोलन शुरू हो गया। सरकार–विरोधी प्रदर्शन हुए, हड़तालें हुई, सभाएँ हुई और जुलूस निकले। सरकार ने कठोर दमन–नीति अपनाई तथा घुड़सवारों और बंदूकों द्वारा उन्हें बंद करना प्रारंभ कर दिया गया। सारे देश में आतंक छा गया था। कोई भी ऐसा नेता जेल से बाहर नहीं था जो इस विषम स्थिति में जनता का मार्गदर्शन करता। सरकार के प्रति घृणा और रोष से उत्तेजित जनता ने हिंसात्मक मार्ग अपनाया। जमशेदपुर, अहमदाबाद और बंबई में मजदूरों ने हड़ताल कर दी। स्कूल और कॉलेज बंद हो गए। ऐसा प्रतीत होने लगा कि देश के कई भागों में उत्तरप्रदेश में बलिया, बंगाल में मिदनापुर में स्थित तामलुक तथा महाराष्ट्र के सतारा में समानांतर सरकारों का गठन किया गया। कई जगह जेलों पर भी आक्रमण हुए और अनेक कैदी जेल से निकलकर भाग गए। जयप्रकाश नारायण, अरुणा आसफ अली, राममनोहर लोहिया आदि नेताओं ने भूमिगत रहते हुए इस आंदोलन में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई।

ब्रिटिश सरकार ने क्रांति के दमन के लिए जनता को मशीनगनों और गोलियों का शिकार बनाया। आतंक फैलाने के लिए पुलिस ने निर्मम कार्य किया। तपती धूप में खड़ा कर लोगों पर गोली चला देना, उन्हें नंगा कर पेड़ों से उलटा टाँग देना और कोड़े मारना जैसे दण्ड पुलिस ने जनता को आंतकित करने के लिए अपनाए। पुलिस एवं सैनिकों की गोली से हजारों व्यक्तियों की जानें गईं। सैकड़ों–हजारों स्त्री–पुरूषों को कोड़ों से पीटा गया। सचमुच ब्रिटिश अधिकारियों का दमनचक्र अपने अंतिम बिंदु पर पहुँच गया था। पटना सचिवालय पर राष्ट्रीय झंडा फहराते समय सात छात्र गोली के शिकार हुए। इस प्रकार, सरकार की दमनकारी नीति पराकाष्ठा पर पहुँच गई थी। इतना ही नहीं, देश के कुछ हिस्सों में अप्राकृतिक अकाल उत्पन्न कर दिया गया।

सरकार के दमन चक्र तथा जनता के हिंसात्मक कार्यों से अहिंसा के पुजारी महात्मा गाँधी क्षुब्ध हुए। उन्होंने 10 फरवरी, 1943 को इक्कीस दिनों का अनशन शुरू किया। सरकार ने इसकी जिम्मेदारी अपने ऊपर नहीं ली। वाइसराय की कार्यकारिणी परिषद के कई भारतीयों ने त्यागपत्र दे दिया और सरकार से अपील की

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

कि वह गांधीजी को जेल से मुक्त कर दे। परंतु, इसका परिणाम कुछ नहीं निकला। 02 मार्च, 1943 को महात्माजी का अनशन सकुशल समाप्त हुआ। अप्रैल, 1944 में गांधीजी बीमार पड़ गए और सरकार ने विवश होकर 06 मई, 1944 को गांधीजी को जेल से छोड़ दिया।

सन 1942 ई0 की अगस्त क्रांति भारतीय राष्ट्रीयता के इतिहास में महत्त्वपूर्ण है। यह सही है कि यह आंदोलन सफल नहीं हो सका। किंतु, इससे क्रांति का महत्त्व कम नहीं होता है। इसने यह प्रमाणित कर दिया कि अब अधिक दिनों तक भारत में ब्रिटिश शासन कायम नहीं रह सकता। सरकार को यह पता चल गया कि भारतीय जनता में ब्रिटिश शासन के विरुद्ध व्यापक असंतोष है। इस प्रकार, 1942 ई0 की क्रांति ने भारतीय स्वतंत्रता के लिए समुचित पृष्ठभूमि तैयार कर दी। क्रांति में भारतीय जनता ने अपूर्व साहस और धैर्य का परिचय दिया। लाखों युवक क्रांति में मातृभूमि की स्वतंत्रता के लिए शहीद होने को तैयार हो गए। इससे स्पष्ट हो गया था कि राष्ट्रीयता की भावना अपनी चरम सीमा पर है और ऐसी स्थिति में अंग्रेजों का कायम रहना संदिग्ध था।

आजाद हिंद फौज–सुभाष चन्द्र बोस 1940 ई0 के उत्तरार्द्ध में कलकत्ता में अपने घर पर कड़ी निगरानी में नजरबंद रखे गए। किंतु, वे जनवरी, 1941 को भारत से बाहर चले गए और भारत की स्वाधीनता के लिए उन्होंने जर्मनी और जापान की यात्रा कर उन देशों की सहायता लेने का प्रयास किया। सिंगापुर पर जापान का अधिकार हो गया था। वहाँ अंग्रेज सेना के बहुत–से भारतीय सैनिक जापान द्वारा गिरफ्तार कर लिए गए थे। नेताजी ने उन सैनिकों को सुसंगठित कर आजाद हिंद फौज का गठन किया और अंग्रेजों के विरुद्ध बहुत सफलता प्राप्त की जो आगे बढ़ती हुई इम्फाल तक पहुँच गई। किंतु अंत में जापान की पराजय के साथ इसकी भी पराजय हो गई। नेताजी की मृत्यु हो गई। आजाद हिंद फौज के अफसर शाहनवाज, ढिल्लन, सहगल आदि गिरफ्तार हो गए और उन पर राजद्रोह का मुकदमा चलाया गया। किंतु, जनमत के दबाव के कारण सरकार को उन्हें रिहा करना पड़ा।

नेहरु एवं सुभाष चन्द्र बोस

नौसैनिकों का विद्रोह–1946 ई0 में एक और महत्त्वपूर्ण घटना घटी। अपनी विभिन्न माँगों को लेकर भारतीय नौसैनिकों ने बम्बई, कराची, मद्रास आदि स्थानों पर विद्रोह किया। सबसे महत्त्वपूर्ण था बंबई में नौसैनिकों का विद्रोह। सरकार से उनकी माँगों की पूर्ति के लिए निवेदन किया गया और सार्वजनिक सभाओं का भी आयोजन किया गया। इन सैनिक विद्रोहों ने ब्रिटिश शासकों को आतंकित कर दिया। इससे विदेशी राष्ट्रों की नजर में भी अंग्रेज गिर गए तथा अंग्रेज यह समझ गये कि अब लम्बे समय तक भारतीय सैनिकों का सत्ता में बने रहने के लिए सहयोग प्राप्त नहीं होगा।

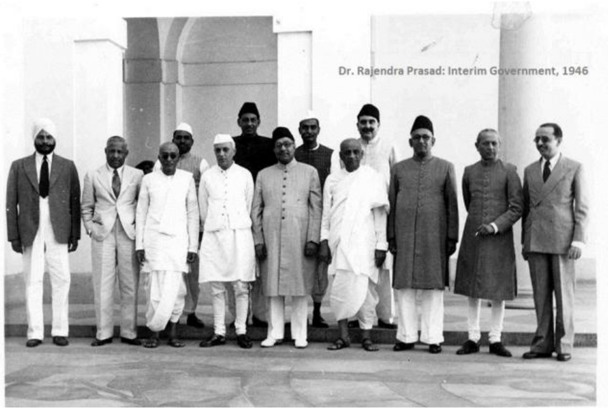

अंतरिम सरकार–1946

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

The Sunday Indian Express

INDIA CELEBRATES FREEDOM

Consambly Takes Over Governance

HISTORIC MIDNIGHT SESSION

Memorable Scenes In Madras

National Flag Over Fort; Mammoth Meeting In Beach

MOUNTBATTEN ASKS TO BE RELIEVED IN APRIL

Confident of India's Destiny

राष्ट्रीय आन्दोलन के इस दौर में मजदूर और किसान खुले तौर पर राजनीतिक और आर्थिक मसलों पर विरोध प्रदर्शन करने लगे थे। इनमे तेभागा आन्दोलन, वार्लिस विद्रोह, तेलंगाना संघर्ष, पुन्नप्रव्यालार विद्रोह, हैदराबाद किसान आन्दोलन, पंजाब के किसान मोर्चे और जगह–जगह होने वाली हड़तालें शामिल थीं।

भारत में हो रहे आन्दोलनों के फलस्वरूप ब्रिटिश सत्ता को यह बात समझ आ गयी कि यहाँ उसकी सत्ता पुराने ढंग से ज्यादा दिन तक कायम नहीं रह सकती। इस दौर में कांग्रेस की मांग थी "भारत छोडो" और ब्रिटिश सरकार ने निर्णय लिया कि मार्च 46 में एक कैबिनेट मिशन भारत भेजा जाये। मिशन का उद्देश्य सत्ता हस्तान्तरण का स्वरुप उसकी कार्यप्रणाली का प्रबंध करना था।

सितम्बर 46 में मुस्लिम लीग की मंजूरी के बिना अंतरिम सरकार बनी और नेहरु को उसका प्रधान नियुक्त किया गया पर जिन्ना ने कांग्रेस और ब्रिटिश शासन के खिलाफ पूरा जोर लगा दिया। कांग्रेस का मानना था कि विभाजन अगर ज़रूरी है तो आज़ादी के बाद उसका फैसला होना चाहिये। जबकि जिन्ना की जिद थी पहले विभाजन फिर आज़ादी। लीग ने कैबिनेट मिशन को अस्वीकार कर दिया इस अस्वीकृति का प्रमाण 16 अगस्त 1946 की सीधी कार्रवाही में दिखाई दिया जिसमे लगभग 5000 लोग मारे गये और आज़ादी का आन्दोलन रक्त रंजित हो गया। इसके बाद लीग ने संविधान सभा में भी शामिल होने से इंकार कर दिया। 1946 के चुनाव में भी लीग ने मुस्लिम सीटों का ध्रुवीकरण कर लिया। कलकत्ता, रावलपिंडी और नोआखाली में दंगे फूट पड़े। और अंततः भारत की आज़ादी लीग के सांप्रदायिक और हिंसक रवैये के कारण विभाजन में बदल गयी और माउंटबेटन योजना के अनुसार भारत के विभाजन कर दिया गया।

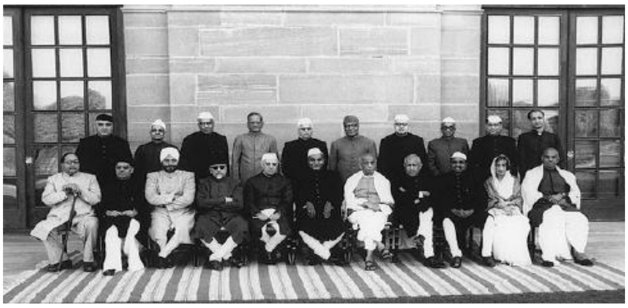
आजादी के बाद पहला मंत्रिमण्डल

महात्मा गाँधी के विचार

महात्मा गाँधी बहुमुखी प्रतिभा के धनी थे। वे मूलतः कर्मण्यतावादी थे। भारतीय स्वाधीनता संग्राम में उनकी उल्लेखनीय भूमिका रही है। वे विचारक, नेता, तथा समाज–सुधारक ही नहीं बल्कि राजनीतिक–चिन्तन को नया मोड़ देने वाले सक्रिय राजनीतिक कर्मशील चिन्तक थे। दक्षिण अफ्रीका से प्रारंभ हुआ इनका सत्याग्रही व्यक्तित्व भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन के दौरान पूर्णतः निखरा। वे सत्याग्रह, सविनय–अवज्ञा एवम् भारत छोड़ो–आन्दोलन जैसे मौलिक आन्दोलनों के प्रेरणा रहे। गाँधी जी के करिश्माई व्यक्तित्व तथा उनके विचारों का न केवल भारत बल्कि विश्व स्तर पर व्यापक प्रभाव पडा। उनके विचार मूलतः प्रयोगात्मक स्वरूप में उभरे।

महात्मा गाँधी ने अपने चिन्तन में भारतीय मूल्यों को प्रस्तुत किया जिसमें पवित्रता, नैतिकता एवं

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

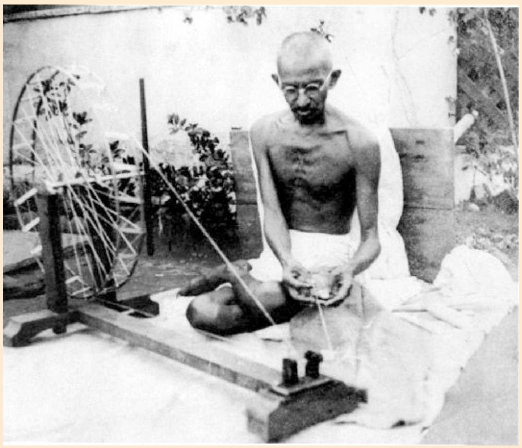

आध्यात्मिकता का प्राधान्य था। संघर्ष एवं छल–कपट की राजनीति के स्थान पर उन्होंने सत्य, अहिंसा, सहयोग, सेवा, लोक–कल्याण तथा प्रेम को अपने विचार दर्शन का आधार बनाया। गाधी जी ने राजनीति में शक्ति की अपेक्षा सदाशयता, नैतिकता एवं हृदय परिवर्तन को महत्त्वपूर्ण स्थान दिया। संसार की पीड़ित मानव–जाति को उनकी सबसे बड़ी देन है अहिंसा का महत्त्वपूर्ण शस्त्र, यह बुराई से लडने का एक बेजोड़ तरीका है जिसे उन्होंने प्रचलित और कार्यान्वित किया। गाँधी जी ने यह प्रेरणा दी कि बिना हथियार के भी शक्तिशाली ब्रिटिश साम्राज्य से सफलता के साथ लड़ा जा सकता है। गाँधी जी ने अपने विचारों को अन्तिम सत्य के रूप में प्रस्तुत नहीं किया और उन्होंने अपनी सम्पूर्ण गतिविधियों को 'सत्य के लिए खोज' बताया। उन्होंने लिखा है कि मै अपने पीछे कोई वाद नहीं छोड़ना चाहता, मेरे जो विचार आज हैं मै उन्हे कल बदल भी सकता हूँ, मेरे पास सिखाने के लिए नया कुछ नहीं है। सत्य और अहिंसा उतने ही पुराने है जितनी पहाड़ियाँ।

गाँधी–चिन्तन पर प्रभाव

गाँधी जी को धार्मिकता अपने परिवार तथा वैष्णव पृष्ठभूमि अपनी माता से प्राप्त हुई थी। उन्होंने वेद, पुराण उपनिषद्, गीता, वेदान्त रामायण आदि धर्म–ग्रंथो से प्रेरणा प्राप्त की। उन्होंने 'राम' को ऐतिहासिक पुरूष तथा अनादि ईश्वर दोनों रूपों मे देखा। उन पर सूरदास, तुलसीदास, मीरा नरसी–मेहता आदि सन्तों का भी गहरा प्रभाव पड़ा। किन्तु वे ईसाई तथा मुस्लिम धर्म के प्रभाव से भी अछूते नहीं रहे। उनकी अपनी धारणा यह थी कि भगवान की कृपा से ही मुक्ति अथवा आत्म–साक्षात्कार सम्भव है। वे ईश्वरीय कृपा को प्राप्त करना आवश्यक मानते थे। वे साकार एवं सगुण ईश्वर में आस्था नहीं रखते हुए भी अवतारवाद में विश्वास रखते थे। उन्हें अद्वैतवादी विचारधारा स्वीकार्य थी फिर भी ईश्वर को सृष्टि का रचयिता मानते थे। वे अपने इंग्लैण्ड प्रवास के दौरान शिक्षा–ग्रहण के समय पाश्चात्य–चिन्तन से अधिक प्रभावित हुए। इनके अतिरिक्त उन पर रस्किन की 'अनु टू दिस लास्ट', थोरो की' आन सिविल डिस–ओबिडियेन्स तथा टॉलस्टॉय की 'किंगडम आफ गाड इज विदिन यू' आदि का गहरा प्रभाव पड़ा। वे इमर्सन से भी अत्यधिक प्रभावित थे।

ईश्वर, सत्य एवं अहिंसा

सत्य गाँधी जी के चिन्तन का प्रभुख आधार स्तम्भ है और ईश्वर सत्य का पर्याय। गाँधी जी के लिए सत्य एवं ईश्वर और ईश्वर एवं सत्य एक–दूसरे के ऊपर परस्पर निर्भर करते हैं। गाँधी जी के अनुसार सत्य के द्वारा ही ईश्वर का अनुभव हो सकता है। जब कभी कोई सच्ची बात कही जाती है, जब कभी कोई सच्ची भावना अनुभूत होती है, तब हम ईश्वर की सत्ता का अनुभव करते है। वह है क्योंकि वह सत्य है। गाँधी जी के लिए सत्य एवं ईश्वर समरूप है। गाँधी जी का ईश्वर पर अटूट विश्वास था। गाँधी जी की ईश्वर के प्रति आस्था, उनके परिवार की वैष्णव साधना एवं उपासना का फल थी। उनके द्वारा ईश्वर में दृढ़ आस्था का भाव वैष्णव सम्प्रदाय के प्रभाव में जाग्रत हुआ। उन्होंने

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

'रामनाम की अलख जगाई। उनके राम ऐतिहासिक पुरूष न होकर नित्य, अनादि एवं अद्वितीय ईश्वर थे। उनके अनुसार ईश्वर के प्रति समर्पित भाव रखे बिना पूर्णता की प्राप्ति नहीं की जा सकती। गाँधी–दर्शन की नींव इस तथ्य पर आधारित है कि सत्य व ईश्वर एक है,सत्य ही ईश्वर है, ईश्वर ही सत्य है। जैसा कि उन्होंने अपनी 'आत्मकथा' में कहा, ''सत्य से भिन्न कोई परमेश्वर है, ऐसा मैंने कभी अनुभव नहीं किया, और सत्य का सम्पूर्ण दर्शन अहिंसा के बिना अधूरा है। उनके अनुसार ईश्वर की प्राप्ति अहिंसा के द्वारा की जा सकती है। अहिंसा के बिना सत्य खोजना एवं पाना सम्भव नहीं है। अहिंसा और सत्य एक दूसरे से इस प्रकार गुँथे हुए हैं कि उन्हें एक दूसरे से पृथक करना व्यवहारतः असम्भव है। वे एक सिक्के के दो पहलू हैं।

''स्वदेशी'' विषयक गाँधीय अवधारणा

गाँधी जी ने 'स्वदेशी' की अवधारणा को अति व्यापक अर्थ प्रदान किया है। यह अवधारणा केवल आर्थिक क्षेत्र में स्वदेश–निर्मित वस्तुओं के प्रयोग मात्र तक सीमित नहीं है। गाँधी जी ने स्वदेशी को स्वराज की पूर्व आवश्यकता बताया है और उन्होंने 'स्वशासन' एवं 'आत्मनिर्भता', 'राष्ट्रीय सरकार' तथा 'राष्ट्रीय आत्मनिर्भरता' को परस्पर जोडने वाली कडी की संज्ञा दी है। उनके अनुसार 'स्वदेशी' हमारे अन्दर निहित वह भावना है जो हमें अधिक दूरस्थ से हटाकर अपने निकट के वातावरण के लाभ एवं उपयोग उठाने तक सीमित रखती है। ''मैं स्वदेशी को सभी के द्वारा पालन किये जाने वाला धार्मिक सिद्धान्त मानता हूँ।'' इस तरह से 'स्वदेशी' एक उच्चस्थ आध्यात्मिक प्रकार की सर्वतोमुखी देशभक्ति है। इसका अर्थ यह है कि हमें दूसरे की तुलना में अपनी मातृभूमि की सेवा करनी चाहिए तथा अपने देश के भीतर सुदूर स्थानों की अपेक्षा अपने तात्कालिक पडौसी की सेवा करनी चाहिए। 'स्वदेशी' की माँग है कि हम अपने देश के आदर्शो एवं संस्थाओं से दृढ़तापूर्वक जुड़े रहें।

गाँधी जी के सर्वोदय सम्बन्धी विचार

गाँधी जी की 'सर्वोदय' सम्बन्धी अवधारणा उनके विचार–दर्शन का सार है। उनका प्रमुख विचार–केन्द्र सम्पूर्ण समाज का उदय एवं विकास है जिसकी परिकल्पना उन्होंने अपने सर्वोदय सम्बन्धी विचारों में अभिवयक्त की है। गाँधी जी का मानना है कि 'सर्वोदय' एक जीवन–दर्शन, एक जीवन–पद्धति तथा एक नये समाज की रचना की दिशा में किया जाने वाला स्तुत्य प्रयास है। चूँकि गाँधी जी साध्य एवं साधनों की एकता में विश्वास करते थे, अतः उनके लिए सर्वोदय एक साधन भी है और साथ ही साध्य भी। गाँधी जी के अनुसार' सर्वोदय' प्रत्येक मानव एवं समाज का परम लक्ष्य है। अतः उस तक पहुँचना सबका परम कर्त्तव्य है। उनका मानना है कि सर्वोदय के मार्ग में पहाड़ भी आ सकते हैं वेगवती नदियाँ भी रास्ते में बाधा–स्वरूप आ सकती हैं और बड़े–बड़े खड्डे, खाईयाँ आदि भी आ सकती हैं, किन्तु इन बाधाओं के होते हुए भी हमें अपने परम–लक्ष्य की ओर जाने से कोई नहीं रोक सकता। इसी इच्छा–शक्ति के आधार पर हम अपने लक्ष्य की प्राप्ति कर सकते हैं।

गाँधी जी के ''सर्वोदय'' सम्बन्धी विचार रस्किन के विचारों से प्रभावित थे। जोहान्सबर्ग से डरबन की रेल यात्रा के समय गाँधी जी के मित्र पोलक ने उन्हें रस्किन की पुस्तक 'अन टू दिस लास्ट' पढ़ने को दी। इस पुस्तक ने उन्हें झकझोर कर रख दिया। पुस्तक पढ़ने के बाद उन्होंन निश्चय किया कि वे अपने जीवन को इस पुस्तक के आदर्शो के अनुरूप डालने का प्रयास करेंगे। उन्होंने इस पुस्तक का गुजराती भाषा में अनुवाद किया और उसका नाम 'सर्वोदय' रखा।

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

गाँधी जी के सर्वोदय सिद्धात का अर्थ –

1. एक व्यक्ति की भलाई में ही सब ही भलाई निहित है।
2. इस अवधारणा से तात्पर्य है समाज के समाज के अधिकतम लोगों की अधिकतम भलाई के स्थान पर सम्पूर्ण लोगों की सम्पूर्ण भलाई, कल्याण एवं विकास।
3. गाँधी जी के अनुसार वकील और नाई दोनों के कार्य की कीमत एक सी होनी चाहिए, क्योंकि आजीविका का अधिकार सबको एक समान है।
4. मेहनत–मजदूरी कर किसान का सादा जीवन ही सच्चा जीवन है।

गाँधी जी 'सर्वोदय' विचार के अन्तर्गत बिना किसी भेद–भाव के सभी के विकास की कामना करते है। वे अधिक से अधिक लोगों की भलाई के सिद्धान्त पर विश्वास नहीं करते क्योंकि इस सिद्धान्त के अन्तर्गत बहुसंख्यकों के हितों के लिए अल्पसंख्यकों के हितों की उपेक्षा की जा सकती है।

चरखा सम्बन्धी विचार

गाँधी जी के अनुसार चरखा भारतीयता व जन–आकाक्षाओं का प्रतीक है। यह असहायों को सहारा प्रदान कर उनका गौरव बढ़ाता है। चरखा आत्मविश्वास, आत्मसंयम तथा आत्मनिर्भरता का पाठ पढ़ाता है। चरखा एक शान्त किन्तु निश्चित क्रान्ति को लाने वाला है। चरखा व्यापारिक युद्ध का प्रतीक न होकर व्याापारिक शान्ति का प्रतीक है। यह सभी को स्वावलम्बन का सन्देश देता है। गाँधी जी का मानना है कि चरखे की सहायता से भारत के आर्थिक और नैतिक पुनरूद्धार में बहुत सहायता मिलेगी।

स्वदेशी की प्रमुख प्रतीक खादी

स्वदेशी की इस व्यापक धारणा को स्वयं गाँधी जी ने प्रतीकात्मक रूप से आम जनता को समझाने के लिए 'खादी' का रूप दिया। खादी का सन्देश वे स्वयं नियमित रूप से चरखा चलाकर देते रहते थे तथा उनके सभी आश्रमवासियों एवम् अनुयायियों को नियमित रूप से चरखा चलाने के लिए कहते थे। किन्तु आम जनता, स्वयं उनके अधिकांश अनुयायी भी स्वदेशी की व्यापक धारणा को भूल गये और उसे खादी का पर्याय ही बना दिया। गाँधी जी के लिए चरखे का संगीत 'आत्मा की आवाज था। उनके लिए खादी आर्थिक स्वाधीनता, समानता एवं स्वाभिमान का प्रतीक थी। उन्होंने खादी को भारतीय एकता का प्रतीक बना दिया और उसे खद्दर के रूप में पहनाकर सबको राष्ट्रीय वेशभूषा से सुसज्जित कर दिया। वे कृषि एवं खादी–निर्माण को मानव कें 'दो फेफड़ों की तरह मानते थे। उनकी दृष्टि में खादी में हिन्दू–मुस्लिम एकता स्थापित करने की तथा अस्पृश्यता निवारण की क्षमता थी।

ट्रस्टीशिप सम्बन्धी विचार

ट्रस्टीशिप या न्यासिता की अवधारणा गांधीवादी आर्थिक व्यवस्था की प्रमुख इकाई जिसका आधार अहिंसा, स्वराज और समता है। गाँधी जी का मत है कि समाज अहिंसा पर आधारित है। गाँधी जी का वास्तवित उद्देश्य ऐसी अर्थ–व्यवस्था का निर्माण करना है जो शोषणरहित हो। उनके ट्रस्टीशिप के सिद्धान्त में आत्मनिर्भरता, परोपकारिता, उत्पादन करने वाली इकाई की स्वायत्तता का होना अनिवार्य है। अहिंसा समान–वितरण और न्यासिता एक–दूसरे पर आधारित हैं। गाँधी जी के अनुसार न्यासिता ऐसा साधन है जो अहिंसात्मक है तथा जिसके माध्यम से आर्थिक परिवर्तन लाया जा सकता है। इसके मूल में यह भावना काम करती है कि धनवान व्यक्तियों द्वारा अपनी अतिरिक्त

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

सम्पत्ति के लिए संरक्षता की भावना रहनी चाहिये और पडोसियों की तुलना में उसे एक रूपया भी ज्यादा नहीं रखना चाहिये। गाँधी जी ने ट्रस्टीशिप की अवधारणा को अत्यन्त गतिशील माना है। गाँधी जी के अनुसार अर्थव्यवस्था ऐसी होनी चाहिए जिसमें किसी को अन्न और वस्त्र की अभाव न हो। प्रत्येक को इतना काम अवश्य मिलना चाहिए कि वह खाने और पहनने की आवश्यकता की पूर्ति कर सके।

सत्याग्रह

सत्याग्रह का अर्थ है– सत्य के प्रति आग्रह अर्थात आत्मशक्ति, प्रेम, भक्ति और सत्य–शक्ति का आग्रह। यह एक ऐसी व्यवस्था है जो सामाजिक तथा राजनीतिक संघर्ष के प्रति गांधीवादी दृष्टिकोण को स्पष्ट करती है। सत्याग्रह केवल सामूहिक संघर्ष और प्रतिकार की पद्धति नहीं है। यह व्यक्तिगत और घरेलू संघर्ष को भी आत्मसंयम द्वारा सामाधान प्रस्तुत करता है। 'सत्याग्रह' शब्द केवल संघर्ष और प्रतिकार का ही सूचक नहीं है बल्कि रचनात्मक कार्यो का भी सूचक है। 'सत्याग्रह' अहिसा का मार्ग है तथा सत्याग्रह में अनुकूल परिस्थिति रहने पर भी बल प्रयोग वर्जित है। यह बहादुरों का अस्त्र है जिसमें किसी भी रूप में हिंसा का समावेश संभव नहीं है। सत्याग्रह का अधार गीता का निष्काम कर्मयोग है। इस का आधार साध्य व साधन की एकता है। सत्याग्रह का सिद्धान्त हमें यह सन्देश देता है कि दुनिया का आधार शस्त्रबल न होकर आत्मबल है, सत्य है, न्याय है, सेवा है, दया है। सत्याग्रह अहिंसा का मार्ग है। यह एक असीमित एवं अपरिमित अवधारणा है। सत्याग्रह में सत्य पर अधिक ध्यान दिया जाता है और उसका किसी भी मूल्य पर त्याग नहीं किया जाता। अन्तिम विजय सत्य की ही होती है। सत्याग्रही पर बल–प्रयोग का कोई प्रभाव नहीं होता। सत्याग्रही स्वभाव से कानून का पालन करने वाला होता है। वह अन्तःकरण की आवाज को सर्वोच्च कानून मानकर उसका पालन करता है। सविनय–अवज्ञा द्वारा कतिपय कानूनों का विरोध केवल देखने मात्र में ही अवज्ञा दृष्टिगोचर होती है। यथार्थ में वह उच्चतर कानून अथवा नैतिकता का पालन करता है। गाँधी जी ने सत्याग्रह को सत्य के प्रति आग्रह' तथा इस प्रकार के आग्रह से उत्पन्न शक्ति माना है। बुराई पर प्रेम द्वारा विजय प्राप्त की जानी चाहिए। ऐसा व्यवहार परिवार, समाज तथा अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में भी सम्भव है। सत्याग्रह की सीमाओं के विषय में तीन सिद्धान्तो का उल्लेख किया गया है–

1. सत्याग्रह करने वालों को अपनी मूल माँग को नहीं बढ़ाया चाहिए,
2. सत्याग्रह से प्राप्त सफलता सत्याग्रह द्वारा ही बनी रह सकती है तथा
3. सत्याग्रह से जो कुछ प्राप्ति सम्भव है वह निश्चित रूप से प्राप्ति होगी।

टॉलस्टॉय से प्रेरणा प्राप्त कर गाँधी जी ने सत्याग्रह को पारिवारिक जीवन की सीमाओं से बाहर निकाल कर सामाजिक एवं राजनीतिक क्षेत्र में इसका प्रयोग किया। सत्याग्रह में न कोई नेता होता है और न ही कोई अनुयायी। सभी नेता हैं और सभी सत्याग्रह मार्ग के समान अनुगामी हैं। आत्मनिर्भरता सत्याग्रह की प्रमुख विशेषता है। सत्याग्रह प्रगतिशील प्रक्रिया है। इसमें न्यूनतम भी अधिकतम है। इसमें न्यूनतम नष्ट नहीं होता और पलायन का कोई स्थान नहीं है। सत्याग्रह का संघर्ष दीर्घाकालीन होता है और वह लक्ष्य प्राप्ति के पश्चात ही समाप्त होता है। सत्याग्रह का प्रयोग दूसरों के हितों व सार्वजनिक हितों के लिए किया जाना चाहिये। गाँधी जी सत्याग्रह को प्रत्यक्ष कार्यवाही का सर्वाधिक प्रभावशाली शस्त्र मानते थे। लेकिन उन्होंने यह सलाह दी कि सत्याग्रह करने से पहले अन्य उपायों का अवलम्बन किया जाना चाहीए। जब अन्य उपाय निष्फल हो जायें तभी सत्याग्रह का अवलम्बन

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

किया जाना चाहिए।

सत्याग्रह के साधन–

1. सविनय अवज्ञा
2. असहयोग
3. हड़ताल
4. सामाजिक बहिष्कार
5. धरना
6. उपवास

शासन का विकेन्द्रीकरण

गांधीजी शासन के अधिक से अधिक विकेन्द्रीकरण के पक्षधर थे। उनका मानना था कि शासन के विकेन्द्रीकरण से अधिक से अधिक लोग शासन कार्य में भागीदार बन सकेंगे। व्यक्ति शासन की प्राथमिक इकाई होगा। शासन के केन्द्रीकरण से व्यक्ति की स्वतंत्रता को खतरा है। गांधीजी के अनुसार शक्तियों का विकेन्द्रीकरण होने से देश के 7 लाख गांवों को स्वतंत्रता पूर्ण कार्य करने का तथा शासन में भागीदारी करने का मौका मिलेगा। शासन एक पिरामिड की भांति न होकर एक महासमुद्रीयवृत्त के अनुसार होगा। इसलिए गांधीजी ने पंचायती राज का समर्थन किया। प्रत्येक गांव में पंचायतें होंगी जो अपने गांव के संबंध में निर्णय लेंगी तथा विकास योजनाओं का निर्माण कर स्वयं ही उनका कार्यान्वयन भी करेंगी।

राष्ट्रीय आंदोलन के कुछ प्रमुख व्यक्तित्व

दादा भाई नौरोजी

बाल गंगाधर तिलक

एनी बेसेन्ट

आसफ अली

बी.बी. मित्र

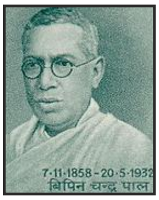

बिपन चन्द्र पाल

श्री ओरोबिन्दो

अरूणा आसफ अली

मोतीलाल नेहरू

लाला लाजपत राय

चितरजंन दास

गोपाल कृष्ण गोखले

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

अभ्यासार्थ प्रश्न

1. ईस्ट इंडिया एसोसियेशन की स्थापना किसने की ?
   (अ) नौरोजी (ब) तिलक (स) राजगोपालाचारी (द) गोखले
2. 1885 ई0 में स्थापना के पश्चात कांग्रेस का पहला विभाजन कब हुआ ?
   (अ) 1905 (ब) 1906 (स) 1907 (द) 1908
3. किस अधिवेशन में कांग्रेस ने पूर्ण स्वराज अपना लक्ष्य निर्धारित किया ?
   (अ) 1929, लाहौर (ब) 1916, लखनऊ (स) 1931, कराची (द) 1936, फैजपुर
4. असहयोग आंदोलन किसके प्रश्न को लेकर प्रारम्भ हुआ ?
   (अ) खिलाफत (ब) आर्थिक मामले (स) रोलट एक्ट (द) साइमन कमीशन

1. 1919 के अधिनियम के तहत स्थापित द्वैध प्रशासन से आप क्या समझते हैं ?
2. मुक्ति दिवस से आप क्या समझते है ?
3. क्रिप्स मिशन के प्रमुख प्रस्ताव क्या थे ?
4. स्वदेशी आंदोलन के संबंध में बताइये।
5. राष्ट्रीय आंदोलन में महात्मा गाँधी की भूमिका का मूल्यांकन कीजिए।

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

अध्याय–3

भारत में संवैधानिक विकास की प्रक्रिया

भारत में आजादी के पश्चात संवैधानिक लोकतंत्र की स्थापना हुई। मध्यकालीन राजतंत्रीय व्यवस्था से संवैधानिक लोकतंत्र के विकास की यात्रा विभिन्न चरणों में सम्पन्न हुई। इन चरणों में महत्त्वपूर्ण घटक ईस्ट इण्डिया कम्पनी का भारत आगमन था। ब्रिटिश क्राउन ने सन 1600 ई. में एक चार्टर (राजपत्र) जारी कर ईस्ट इण्डिया कम्पनी की स्थापना की। इस कम्पनी का नाम ''द गवर्नर एण्ड़ कम्पनी ऑफ मर्चेण्टस ऑफ लंदन ट्रेडिंग इनटू ईस्ट इण्ड़ीज'' रखा गया। ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने भारत में सर्वप्रथम सन 1612 ई. में सूरत में अपना कार्यालय स्थापित किया। शुरुआत में यह कम्पनी एक व्यापारिक संस्था ही थी। प्रारम्भ में चार्टर (राजपत्र) के अनुसार कम्पनी को कुछ सीमित विधायी एवं न्यायिक अधिकार ही प्राप्त थे। परन्तु धीरे–धीरे इसने अपनी कार्यशैली बदल ली और सन 1765 के आते–आते यह एक ऐसी क्षेत्रीय शक्ति के रूप में उभरी जो भारत में अंग्रेजी साम्राज्य के विस्तार का साधन बन गयी। ब्रिटिश शासन काल को दो भागों में विभक्त किया जा सकता है (1) सन 1857 ई. तक का कम्पनी का शासन और (2) सन 1858 से 1947 ई. तक ब्रिटिश ताज का प्रत्यक्ष शासन।

ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने सन 1757 ई. की प्लासी की लड़ाई, सन 1764 ई. का बक्सर का युद्व तथा सन 1765 ई. में इलाहाबाद की संधि से अपने प्रभाव में वृद्धि कर ली। इलाहाबाद की संधि से बंगाल, बिहार एवं उड़ीसा की दीवानी प्राप्त करने के पश्चात लार्ड क्लाइव के द्वैध प्रशासन ने बंगाल में अराजकता की स्थिति पैदा कर दी। कम्पनी का संचालन कोर्ट ऑफ डायरेक्टर्स किया करते थे जो कोर्ट ऑफ प्रोपराइटर्स द्वारा चुने जाते थे। ये प्रोपराइटर्स कम्पनी के हिस्सेदार थे। भारत में कम्पनी के प्रभाव में वृद्धि के फलस्वरूप कम्पनी के कर्मचारियों द्वारा अत्यधिक मुनाफा कमाने व कम्पनी के आर्थिक संकट में उलझने के कारण इस पर ब्रिटिश संसद व सरकार के अधिक प्रभावी नियंत्रण की माँग उठने लगी। इस हेतु ब्रिटिश संसद द्वारा सन 1773 में रेग्यूलेटिंग एक्ट पारित किया गया। ब्रिटिश संसद के इस संवैधानिक दखल ने भारत में संवैधानिक इतिहास की एक लम्बी प्रकिया प्रारम्भ कर दी जिसको निम्नलिखित शीर्षकों के अन्तर्गत वर्णित किया जा सकता है–

सन 1773 ई. का रेग्यूलेटिंग एक्ट–

भारत में संवैधानिक विकास का यह अधिनियम एक महत्त्वपूर्ण कदम था क्योंकि ब्रिटिश सरकार द्वारा ईस्ट इण्डिया कम्पनी के कार्यों को नियंत्रित और विनियमित करने का यह पहला प्रयास था। इस एक्ट से कम्पनी के कार्यों व अधिकारों में निम्नलिखित मुख्य परिवर्तन हुए–

(i) इस एक्ट के तहत बंगाल का गवर्नर, गवर्नर जनरल बनाया गया और इस प्रकार बंगाल के तत्कालीन गवर्नर वॉरेन हेस्टिंग्स बंगाल के प्रथम गवर्नर जनरल बने।

(ii) गवर्नर जनरल की परिषद में चार सदस्यों का प्रावधान रखा गया।

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

(iii) इस एक्ट ने "ब्रिटिश भारत में केन्द्रीय सरकार की नींव रखी। कलकत्ता प्रेसीडेन्सी को पदोन्नत किया गया और उसे अधीनस्थ प्रेसीडेन्सियों की विदेश नीति, युद्ध एवं शान्ति के मामलों पर नियंत्रण प्रदान किया गया।

(iv) ईस्ट इंडिया कम्पनी के भारतीय प्रशासन पर संसदीय नियंत्रण की शुरूआत हुई।

(v) भारत में सर्वप्रथम कम्पनी के प्रशासन एवं कर्मचारियों पर न्यायिक नियंत्रण हेतु सुप्रीम कोर्ट की स्थापना की गई।

अतः स्पष्ट है कि रेग्यूलेटिंग एक्ट से ब्रिटिश संसद व सरकार का ईस्ट इण्डिया कम्पनी पर नियंत्रण बढ़ गया। यह एक्ट गुरूमुख निहाल सिंह (लैण्डमार्क्स इन इण्डियन कॉन्स्टीटयूशन एण्ड नेशनल डवलपमेण्ट) के अनुसार महान संवैधानिक महत्त्व का था क्योंकि इसने निश्चित रूप से कम्पनी के राजनीतिक कार्यों को स्वीकार किया और पहली बार संसद को ये अधिकार दिया कि वह जैसी चाहे वैसी सरकार स्थापित करने का आदेश भारत में दे। इसने भारत में सरकार का स्वरूप बदल दिया।

लॉर्ड नॉर्थ के अनुसार "इस एक्ट का प्रत्येक अनुच्छेद इस प्रकार बनाया गया था कि वह कम्पनी के मामलों को ठोस, सुस्पष्ट एवं निर्णायक स्वरूप प्रदान कर सके।"

1781 का संशोधन अधिनियम–

इस अधिनियम के द्वारा सुप्रीम कोर्ट की विसंगतिपूर्ण अधिकारिता को स्पष्टतापूर्वक निर्धारित किया गया। सुप्रीम कोर्ट एवं सर्वोच्च परिषद के बीच विवाद एवं टकराव को कम करने के लिए यह अधिनियम लाया गया।

(1) सुप्रीम कोर्ट की अधिकारिता को सीमित करते हुए यह रोक लगा दी गयी कि वह कम्पनी के कर्मचारियों के प्रशासनिक निर्णयों के विरुद्ध कार्यवाही नहीं कर सकता।

(2) साथ ही राजस्व वसूली से संबंधित व्यक्तियों एवं कर्मचारियों के विरुद्ध सुप्रीम कोर्ट कार्यवाही नहीं कर सकता था। इस प्रकार बंगाल की सर्वोच्च परिषद की सर्वोच्चता को स्थापित किया गया।

(3) कानून बनाने तथा उसका क्रियान्वयन करते समय सुप्रीम कोर्ट को भारतीयों के सामाजिक तथा धार्मिक रीति–रिवाजों का सम्मान करने का भी निर्देश दिया गया।

(4) कलकत्ता की सरकार को बंगाल, बिहार और उड़ीसा के लिए भी विधि बनाने का अधिकार प्रदान किया गया।

(5) इस अधिनियम को एक्ट ऑफ सेटलमेंट अथवा बंदोबस्त अधिनियम के नाम से भी जाना जाता है।

सन 1784 का पिट्स इंडिया एक्ट–

रेग्यूलेटिंग एक्ट की कमियों को दूर करने के लिए ब्रिटिश संसद ने सन 1784 ई. में पिट्स इंडिया एक्ट पारित किया। इस अधिनियम से कम्पनी के निदेशक मण्डल के राजनीतिक कार्यों से संबंधित अधिकार कम कर दिये गये। राजनीतिक कार्यों के लिए 'बोर्ड ऑफ कन्ट्रोल' की स्थापना की गई जिसका अध्यक्ष ब्रिटिश संसद का सदस्य होता था। इस अधिनियम के पारित होने से निम्न परिवर्तन हुए–

(i) कम्पनी की सरकार पर ब्रिटिश संसद का नियंत्रण बढ़ गया।

(ii) गवर्नर जनरल की परिषद में चार के स्थान पर तीन सदस्य कर दिये गये।

(iii) भारत में कम्पनी के अधिकृत प्रदेशों को पहली बार 'ब्रिटिश अधिकृत भारतीय प्रदेश' का नाम दिया

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

गया।

(iv) बम्बई तथा मद्रास में गवर्नरों की सहायता के लिये तीन–तीन सदस्यीय काऊंसिल बनायी गयीं।

सर कार्टनी इल्बर्ट के अनुसार "इस अधिनियम द्वारा बोर्ड ऑफ कंट्रोल की स्थापना की गयी, जिसका मुख्य कार्य डायरेक्टर्स को नियंत्रित करना था। इस प्रकार शासन की दोहरी प्रणाली, एक कम्पनी द्वारा और दूसरी संसदीय बोर्ड द्वारा स्थापित की गयी। निरीक्षण एवं प्रति निरीक्षण की यह व्यवस्था सन 1858 तक चलती रही।

सन 1786 का संशोधन अधिनियम–

इस अधिनियम के द्वारा गवर्नर जनरल को विशेष परिस्थितियों में अपनी परिषद के निर्णयों को रद्द करने तथा अपने निर्णय लागू करने का अधिकार दिया गया। गवर्नर जनरल को मुख्य सेनापति की शक्तियां भी मिल गयीं।

सन 1793 का चार्टर एक्ट–

कम्पनी के कार्यों एवं संगठन में सुधार के लिए यह चार्टर पारित किया गया। इस चार्टर की प्रमुख विशेषता यह थी कि इसमें पूर्व के अधिनियमों के सभी महत्त्वपूर्ण प्रावधानों को शामिल किया गया था। इस अधिनियम की प्रमुख विशेषताएँ निम्नलिखित थीं :–

(1) कम्पनी के व्यापारिक अधिकारों को अगले 20 वर्षों के लिए बढ़ा दिया गया।

(2) विगत शासकों के व्यक्तिगत नियमों के स्थान पर ब्रिटिश भारत में लिखित विधि–विधानों द्वारा प्रशासन की आधारशिला रखी गयी। इन लिखित विधियों एवं नियमों की व्याख्या न्यायालय द्वारा किया जाना निर्धारित किया गया।

(3) गवर्नर जनरल एवं गवर्नरों की परिषदों की सदस्यता की योग्यता के लिए सदस्य को कम–से–कम 12 वर्षों तक भारत में रहने के अनुभव को आवश्यक कर दिया गया।

(4) नियंत्रक मंडल के सदस्यों का वेतन अब भारतीय कोष से दिया जाना तय हुआ।

सन 1813 ई. का चार्टर एक्ट–

लम्बे समय तक चले नेपोलियन युद्व और महाद्वीपीय प्रणाली के क्रियान्वयन के कारण ब्रिटिश व्यापार में उल्लेखनीय कमी दर्ज की गयी। दूसरी ओर ब्रिटिश व्यापारी एवं उद्योगपति पूर्वी देशों के व्यापार को सभी निजी व्यापारियो के लिए खोलने की माँग कर रहे थे। अतः उनकी माँगो को पूरा करने लिए चार्टर अधिनियम पारित किया गया। इसे सन 1813 ई. का ईस्ट इंडिया कंपनी अधिनियम भी कहा गया। इसके मुख्य प्रावधान निम्न प्रकार थे :–

(1) कम्पनी के व्यापारिक एकाधिकार को समाप्त किया गया। भारतीय व्यापार को सभी ब्रिटिश व्यापारियों के लिए खोल दिया गया। केवल चाय तथा चीन के साथ भारत के व्यापार पर कम्पनी का एकाधिकार रहा।

(2) ईसाई मिशनरियों को भारत में जाकर ईसाई धर्म के प्रचार–प्रसार की अनुमति दी गयी।

(3) शिक्षा के लिए 1 लाख रूपये का प्रावधान रखा गया।

सन 1833 ई. का चार्टर एक्ट–

सन 1813 के अधिनियम के बाद भारत में कम्पनी के साम्राज्य में काफी वृद्धि हुई तथा महाराष्ट्र, मध्य

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

भारत, ग्वालियर, इंदौर आदि पर अंग्रेजों का प्रभुत्व स्थापित हो गया। इसी प्रभुत्व को स्थायित्व प्रदान करने के लिए 1833 का चार्टर अधिनियम पारित किया गया। इसके मुख्य प्रावधान निम्न प्रकार थे :–

(1) कम्पनी की व्यापारिक गतिविधियों को पूर्णतया समाप्त कर दिया गया। इसके साथ ही स्वाभाविक रूप से चाय के व्यापार तथा चीन के साथ व्यापार पर कम्पनी का एकाधिकार समाप्त हुआ।

(2) इस अधिनियम के द्वारा भारत के प्रशासन का केन्द्रीकरण कर दिया गया बंगाल के गवर्नर – जनरल को पूरे भारत का गवर्नर–जनरल बनाया गया। अधीनस्थ प्रेसिडेंसियों के विधायी एवं वित्तीय अधिकार समाप्त कर दिये गये।

(3) कम्पनी के ऋणों की जिम्मेदारी भारत सरकार ने अपने ऊपर ले ली।

(4) कम्पनी के किसी पद पर नियुक्ति के लिये सभी भारतीयों को अन्य ब्रिटिश प्रजा के समान सक्षम माना गया। धर्म, राष्ट्रीयता, प्रजाति इत्यादि के आधार पर भारतीयों के साथ भेदभाव नहीं किया जायेगा।

(5) इस अधिनियम द्वारा बेहतर कानून बनाने के लिए गर्वनर जनरल की परिषद में कानूनी सदस्य के रूप में चौथे सदस्य को सम्मिलित किया गया।

(6) भारतीय कानूनों को संचित, संहिता बद्ध तथा सुधारने की भावना से एक विधि आयोग की नियुक्ति की गई।

(7) दासों की स्थिति सुधारने तथा दासता समाप्त करने के लिए कहा गया।

सन 1853 ई. का चार्टर एक्ट–

सन 1853 ई0 का राजपत्र भारतीय शासन (ब्रिटिश कालीन) के इतिहास में अंतिम चार्टर एक्ट था। यह अधिनियम मुख्यतः भारतीयों की ओर से कम्पनी के शासन की समाप्ति की माँग तथा तत्कालीन गवर्नर जनरल लॉर्ड डलहौजी की रिपोर्ट पर आधारित था। इसके अनुसार कम्पनी को भारतीय प्रदेशों को ब्रिटेन की साम्राज्ञी तथा उसके उत्तराधिकारियों की ओर से ट्रस्टी के रूप में संसद के निर्णयाधीन रखने की अनुमति दी गयी। इसकी प्रमुख विशेषताएं निम्नलिखित थीं :–

(1) ब्रिटिश संसद को किसी भी समय कम्पनी के भारतीय शासन को समाप्त करने का अधिकार दिया गया।

(2) कार्यकारिणी परिषद के लॉ मेम्बर को परिषद के पूर्ण सदस्य का दर्जा प्रदान किया गया।

(3) बंगाल के लिए पृथक गवर्नर की नियुक्ति की व्यवस्था की गयी।

(4) गवर्नर जनरल को अपनी परिषद के उपाध्यक्ष की नियुक्ति का अधिकार दिया गया।

(5) विधायी कार्यों को प्रशासनिक कार्यों से पृथक करने की व्यवस्था की गयी।

(6) निदेशक मंडल में सदस्यों की संख्या 24 से घटाकर 18 कर दी गयी।

(7) कम्पनी के कर्मचारियों की नियुक्ति के लिए प्रतियोगी परीक्षा की व्यवस्था की गयी।

(8) पहली बार व्यवस्थापिकाओं को यह अधिकार दिया गया कि वे अपने अनुरूप नियमों का निर्माण कर सकती हैं।

सन 1858 ई. का भारत सरकार अधिनियम–

सन 1853 ई0 के चार्टर में कम्पनी को शासन के लिए चूँकि किसी निश्चित अवधि के लिए अधिकृत नहीं किया गया था, इसलिए किसी भी समय सत्ता का हस्तांतरण ब्रिटिश ताज को संसद के द्वारा हस्तांतरित किया

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

जा सकता था। भारतीय जनता ने सन 1857 ई. में अंग्रेजी शासन के खिलाफ विद्रोह कर दिया। इस कारण ब्रिटिश शासन विवश होकर औपनिवेशिक शासन व्यवस्था में बदलाव पर विचार करने लगा। सन 1857 ई.के गदर ने शासन की असंतोषजनक नीतियां उजागर कर दी थीं, जिससे संसद को कम्पनी को पदच्युत करने का बहाना मिल गया। साम्राज्य की सुरक्षा के लिए ब्रिटिश संसद ने कई अधिनियम पारित किये जो भारतीय प्रशासन का आधार बने। 1858 के अधिनियम के प्रमुख प्रावधान निम्नलिखित थे :–

1. भारत में कम्पनी के शासन को समाप्त कर शासन का उत्तरदायित्व ब्रिटिश साम्राज्ञी को सौंप दिया गया।
2. अब भारत का शासन ब्रिटिश साम्राज्ञी की ओर से राज्य सचिव को चलाना था, जिसकी सहायता के लिए 15 सदस्यीय भारत परिषद का गठन किया गया। भारत के शासन से संबंधित सभी कानूनों एवं कार्यवाहियों पर भारत सचिव की स्वीकृति अनिवार्य की गयी।
3. भारत के गवर्नर जनरल का नाम 'वाइसराय' (क्राउन का प्रतिनिधि) किया गया तथा उसे भारत सचिव की आज्ञा के अनुसार कार्य करने के लिए बाध्य किया गया। इस प्रकार भारत के प्रथम वाइसराय लॉर्ड कैनिंग बने।
4. भारत मंत्री को वाइसराय से गुप्त पत्र व्यवहार तथा ब्रिटिश संसद में प्रतिवर्ष भारतीय बजट पेश करने का अधिकार दिया गया।
5. भारत सचिव का पद सृजित किया गया ।

1 नवम्बर, 1858 को ब्रिटेन की महारानी विक्टोरिया ने भारत के सम्बंध में एक महत्त्वपूर्ण नीतिगत उद्घोषणा की। इस घोषणा के महत्त्वपूर्ण बिंदु निम्न प्रकार थे :–

1. भारतीय प्रजा को साम्राज्य के अन्य भागों में रहने वाली ब्रिटिश प्रजा के समान माना जायेगा।
2. भारतीय नागरिकों के साथ लोक सेवाओं में अपनी शिक्षा, योग्यता तथा विश्वसनीयता के आधार पर स्वतंत्र एवं निष्पक्ष भर्ती में भेदभाव नहीं किया जायेगा।
3. भारत के लोगों के भौतिक एवं नैतिक उन्नति के प्रयास किये जायेंगे।
4. देशी नरेशों के साथ ईस्ट इण्डिया कम्पनी की संधियों का यथावत सम्मान किया जायेगा।

सन 1861 ई. का भारतीय परिषद अधिनियम–

सन 1861 ई. का भारतीय परिषद अधिनियम भारत के संवैधानिक इतिहास में एक महत्त्वपूर्ण और युगांतकारी घटना है। यह दो कारणों से महत्त्वपूर्ण है। प्रथम, इसने गवर्नर जनरल को अपनी विस्तारित परिषद में भारतीय जनता के प्रतिनिधियों को नामजद करके उन्हें विधायी कार्य से संबद्ध करने का अधिकार दिया। दूसरा यह कि इसने गवर्नर जनरल की परिषद की विधायी शक्तियों का विकेन्द्रीकरण कर दिया अर्थात बम्बई और मद्रास की सरकारों को भी विधायी शक्ति प्रदान की गयी। इस अधिनियम के अन्य महत्त्वपूर्ण प्रावधान निम्न प्रकार थे :–

(1) गवर्नर जनरल की विधान परिषद की संख्या में वृद्धि करते हुए परिषद में न्यूनतम 6 तथा अधिकतम 12 सदस्य किये गये जिनमें आधे सदस्यों का गैर सरकारी होना जरूरी था।

(2) गवर्नर जनरल को विधायी कार्यों हेतु नये प्रांत के निर्माण तथा नव निर्मित प्रांत में गवर्नर या लेफ्टिनेंट गवर्नर को नियुक्त करने का अधिकार दिया गया।

(3) भारतीयों के लिए गवर्नर जनरल व गवर्नरों की परिषदों में गैर सरकारी सदस्यों के रूप में भारतीयों की

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

भागीदारी का मार्ग प्रशस्त हुआ।

(4) गवर्नर जनरल को अध्यादेश जारी करने का अधिकार दिया गया। सन 1865 ई0 के अधिनियम द्वारा गवर्नर जनरल को उदघोषणा के माध्यम से प्रेसीडेन्सियों तथा प्रांतों की सीमाओं को तय करने तथा उनमें परिवर्तन करने का अधिकार दिया गया। इसी तरह सन 1869 ई0 के अधिनियम द्वारा गवर्नर जनरल को विदेश में रहने वाले भारतीयों के सम्बन्ध में कानून बनाने का अधिकार दिया गया। सन 1873 ई0 के अधिनियम द्वारा ईस्ट इंडिया कम्पनी को किसी भी समय भंग करने का प्रावधान किया गया। इसी के अनुसरण में 1 जनवरी, 1874 को ईस्ट इंडिया कम्पनी को भंग कर दिया गया।

सन 1892 ई. का भारतीय परिषद अधिनियम—

सन 1861 ई0 के अधिनियम के अंतर्गत परिषद में गैर सरकारी सदस्य या तो बड़े जमींदार, अवकाश प्राप्त अधिकारी या भारत के राज परिवारों के सदस्य हुआ करते थे। भारतीय जनता के आम प्रतिनिधित्व की आकांक्षा की पूर्ति इससे नहीं हुई। सन 1885 ई0 में कांग्रेस की स्थापना हो चुकी थी और वह ब्रिटिश राज के विरुद्ध आंदोलन में भारतीय जनता की अगुवाई करने लगी। इस समय राष्ट्रवाद का आंदोलन चरम पर था। भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस द्वारा भारतीयों के अधिक प्रतिनिधित्व की माँग की जाती थी। यूरोपीय व्यापारियों की ओर से भी भारत सरकार से इंग्लैंड में स्थित 'इंडिया ऑफिस' के नियंत्रण से अधिक स्वतंत्रता की माँग की जाने लगी। परिणामस्वरूप सर जॉर्ज चिजनी की अध्यक्षता में एक कमेटी गठित की गयी जिसके सुझावों का समावेश 1892 के अधिनियम में किया गया। इस अधिनियम के मुख्य प्रावधान निम्न प्रकार थे :—

(1) इस अधिनियम के द्वारा केन्द्रीय तथा प्रांतीय विधान परिषद में 'अतिरिक्त सदस्यों' की संख्या बढ़ा दी गयी और उनके निर्वाचन का भी विशेष उल्लेख किया गया। यद्यपि इसके द्वारा सीमित चुनाव की ही व्यवस्था हुई, फिर भी भारत के मुख्य सामाजिक वर्गों का प्रतिनिधित्व विधान परिषद में सुनिश्चित किया गया।

(2) निर्वाचन की पद्धति का सिद्धांत सीमित रूप से स्वीकार कर लिया गया।

(3) परिषद के अधिकारों में भी वृद्धि की गयी। वार्षिक आय या बजट का ब्योरा परिषद में प्रस्तुत करना आवश्यक किया गया। विषयों पर चर्चा का अधिकार था लेकिन मत देने का अधिकार नहीं दिया गया ।

(4) सदस्यों को कार्यपालिका के कार्य के बारे में प्रश्न पूछने का अधिकार दिया गया।

यद्यपि इस अधिनियम द्वारा विधायिका के सदस्यों के निर्वाचन की सीमित शुरूआत हुई, फिर भी इस अधिनियम में अनेक खामियाँ थीं जिनके कारण भारतीय राष्ट्रवादियों ने इस अधिनियम की बार—बार आलोचना की। यह माना गया कि स्थानीय निकायों का चुनाव मंडल बनाना एक प्रकार से इनके द्वारा मनोनीत करना ही है। विधान मंडलों की शक्तियाँ भी काफी सीमित थीं। सदस्य अनुपूरक प्रश्न नहीं पूछ सकते थे। किसी प्रश्न का उत्तर देने से इंकार किया जा सकता था। इसके अलावा वर्गों का प्रतिनिधित्व भी पक्षपातपूर्ण था।

सन 1909 ई. का भारतीय परिषद अधिनियम (मॉर्ले मिन्टो सुधार)—

सन 1892 ई. का अधिनियम राष्ट्रवादियों को संतुष्ट नहीं कर सका, साथ ही राष्ट्रीय आंदोलन पर उग्रवादी नेताओं का प्रभाव बढ़ता जा रहा था। सेक्रेटरी ऑफ स्टेट, लॉर्ड मॉर्ले तथा भारत में वाइसराय लॉर्ड मिन्टो, दोनों ही शासन में कुछ नये सुधारों के पक्षधर थे। सर अरुण्डेल कमेटी की रिपोर्ट के आधार पर फरवरी, 1909 ई. में नया अधिनियम पारित किया गया जिसे भारतीय परिषद अधिनियम, 1909 और 'मार्ले—मिन्टो सुधार' के नाम से जाना गया। इस अधिनियम के प्रमुख प्रावधान इस प्रकार थे :—

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

(1) इस अधिनियम के द्वारा केन्द्रीय एवं प्रांतीय विधान परिषदों में निर्वाचित सदस्यों की संख्या में वृद्धि की गयी। प्रांतीय विधान परिषदों में गैर सरकारी सदस्यों का बहुमत स्थापित किया गया।

(2) केन्द्रीय एवं प्रान्तीय परिषदों की सीटों को 3 श्रेणियों में विभाजित किया गया– सामान्य (क्षेत्रीय आधार पर विभिन्न प्रान्तों को आवंटित), विशिष्ट निर्वाचन मण्डल (मुसलमान व भूमिपति) एवं विशिष्ट हित (चैम्बर ऑफ कॉमर्स, प्लांटर्स एसोसिएशन, विश्वविद्यालय, पोर्ट ट्रस्ट इत्यादि)।

(3) सामान्य सीटों के सदस्य अप्रत्यक्ष रूप से चुने जाते थे। स्थानीय निकायों से निर्वाचन परिषद का गठन होता था। ये प्रांतीय विधान परिषदों के सदस्यों का चुनाव करती थी और प्रांतीय विधान परिषद के सदस्य केन्द्रीय व्यवस्थापिका के सदस्यों का चुनाव करते थे।

(4) पहली बार पृथक निर्वाचन व्यवस्था को प्रारंभ किया गया। साम्प्रदायिक आधार पर निर्वाचन की पद्धति लागू की गयी।

(5) गवर्नर जनरल की कार्यकारिणी में एक भारतीय सदस्य को नियुक्त करने की व्यवस्था की गयी। प्रथम भारतीय सदस्य के रूप में श्री सत्येन्द्र सिन्हा की नियुक्ति हुई।

(6) विधायिका के कार्यक्षेत्र में विस्तार किया गया। सदस्यों को बजट प्रस्ताव करने और जनहित के विषयों पर प्रश्न पूछने एवं पूरक प्रश्न पूछने का अधिकार दिया गया। जिन विषयों को विधायिका के क्षेत्र से बाहर रखा गया था, वे थे सशस्त्र सेना, विदेशी सम्बंध और देशी रियासतें।

(7) इस अधिनियम द्वारा सेंट्रल लेजिस्लेटिव काउंसिल का नाम परिवर्तन कर इम्पीरियल लेजिस्लेटिव काउंसिल किया गया।

इस अधिनियम की सबसे बड़ी त्रुटि यह थी कि पृथक अथवा साम्प्रदायिक आधार पर निर्वाचन की पद्धति लागू की गयी। इस अधिनियम से संसदीय प्रणाली तो दे दी गयी, परंतु उत्तरदायित्व नहीं दिया गया।

सन 1919 ई. का भारत सरकार अधिनियम (मोंटेग्यू–चेम्सफोर्ड सुधार)–

1909 के अधिनियम की आलोचना, प्रथम विश्व युद्ध से उत्पन्न परिस्थितियों, ब्रिटिश शासन की नीतियों के खिलाफ उपजे क्रान्तिकारी आन्दोलनों के विस्तार तथा विभिन्न वर्गों को सन्तुष्ट करने के उद्देश्य से 20 अगस्त, 1917 को तत्कालीन सेक्रेटरी ऑफ स्टेट फॉर इंडिया, मॉन्टेग्यु ने इंग्लैड के 'हाउस ऑफ कॉमन्स' में एक ऐतिहासिक वक्तव्य दिया, जिसमें उन्होंने ब्रिटेन के इरादे इस प्रकार बयां किये :

"प्रशासन के साथ भारतीयों को सम्बद्ध करना और स्वायत्तशासी संस्थाओं का क्रमिक विकास, जिससे ब्रिटिश भारत के अभिन्न अंग के रूप में उत्तरदायी सरकार की स्थापना हो सके।"

इसी घोषणा को क्रियान्वित करने के लिए 'मोंटफोर्ड रिपोर्ट–1918' प्रकाशित की गयी, जो 1919 के अधिनियम का आधार बनी। इस एक्ट द्वारा तत्कालीन भारतीय शासन व्यवस्था में कई महत्त्वपूर्ण परिवर्तन किये गये :–

(1) केन्द्रीय विधान परिषद का स्थान राज्य परिषद (उच्च सदन) तथा विधान सभा (निम्न सदन) वाले द्वि सदनीय विधान मंडल ने ले लिया। हालांकि विधान मण्डल में सदस्यों को मनोनीत करने की कुछ शक्तियाँ यथावत रखी गयीं, फिर भी प्रत्येक सदन में निर्वाचित सदस्यों का बहुमत सुनिश्चित किया गया।

(2) सदस्यों का चुनाव सीमांकित निर्वाचन क्षेत्रों से प्रत्यक्ष रूप से किया गया। अधिनियम से मताधिकार का

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

विस्तार किया गया। निर्वाचक मंडल के लिए योग्यताएँ साम्प्रदायिक समूह, निवास और सम्पत्ति पर आधारित थीं।

(3) आठ प्रमुख प्रांतों में जिन्हें 'गवर्नर का प्रांत' कहा जाता था में "द्वैध शासन" की एक नयी पद्धति शुरू की गयी। प्रांतीय सूची के विषयों को दो भागों में बाँटा गया– सुरक्षित विषय और हस्तांतरित विषय। सुरक्षित सूची के विषय गवर्नर के अधिकार क्षेत्र में थे और वह इन विभागों को अपनी कार्यकारिणी की सहायता से देखता था। हस्तांतरित विषय भारतीय मंत्रियों के अधिकार में थे, जिनकी नियुक्ति भारतीय सदस्यों में से की जाती थी।

(4) अधिनियम के लागू होने के दस वर्ष बाद द्वैध शासन प्रणाली तथा संवैधानिक सुधारों के व्यावहारिक रूप की जाँच के लिए और उत्तरदायी सरकार की प्रगति से सम्बन्धित मामलों पर सिफारिश करने के लिए ब्रिटिश संसद द्वारा एक आयोग के गठन की व्यवस्था की गयी। इसी प्रावधान के अनुसार सन 1927 ई0 में साईमन आयोग का गठन किया गया।

सन 1919 ई0 के अधिनियम में अनेक खामियाँ थीं। इसने उत्तरदायी सरकार की माँग को पूरा नहीं किया। इसके अलावा गवर्नर जनरल की स्वीकृति के बिना प्रांतीय विधान मंडल अनेक विषयों में विधेयक पर बहस नहीं कर सकते थे। सिद्धान्त रूप में केन्द्रीय विधान मंडल सम्पूर्ण क्षेत्र में कानून बनाने के लिए सर्वोच्च तथा सक्षम बना रहा। केन्द्र तथा प्रांतों के बीच शक्तियों के बँटवारे के बावजूद ब्रिटिश भारत का संविधान एकात्मक राज्य का संविधान ही बना रहा। प्रांतों में द्वैध शासन पूरी तरह विफल हो गया। गवर्नर का पूर्ण वर्चस्व कायम रहा। वित्तीय शक्ति के अभाव में मंत्री अपनी नीतियों को प्रभावी रूप से क्रियान्वित नहीं कर सकते थे। इसके अलावा मंत्री विधान मंडल के प्रति सामूहिक रूप से जिम्मेदार भी नहीं थे।

साइमन कमीशन 1927–

1919 के अधिनियम की धारा 84 के अनुसार सर जॉन साइमन की अध्यक्षता में एक आयोग का गठन किया गया। इस आयोग में एक भी भारतीय सदस्य नहीं था। अतः भारतीयों ने इसका विरोध किया। आयोग की रिपोर्ट जून, 1930 में प्रकाशित हुई। साइमन कमीशन द्वारा डोमिनियन दर्जे की माँग को ठुकरा दिये जाने के बाद कांग्रेस ने सन 1929 ई. के लाहौर अधिवेशन में 'पूर्ण स्वराज' का प्रस्ताव पारित किया।

साइमन कमीशन का बहिष्कार करते हुए

सन 1935 ई. का भारत सरकार अधिनियम–

1919 के अधिनियम के तहत प्रस्तावित उत्तरदायी सरकार कभी भी अस्तित्व में नहीं आ पायी। इसके पश्चात सन 1927 ई0 में गठित साइमन कमीशन, नेहरू रिपोर्ट, गोलमेज सम्मेलनों द्वारा अपने लक्ष्य को प्राप्त नहीं कर पाना आदि की पृष्ठभूमि ने 1935 के अधिनियम की आधारशिला रखी। 1935 के भारत सरकार अधिनियम में 321 अनुच्छेद तथा 10 अनुसूचियाँ थीं। इस अधिनियम के प्रमुख प्रावधान निम्न प्रकार थे :–

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

(1) इस अधिनियम द्वारा ब्रिटिश प्रांतों एवं देशी राज्यों के अखिल भारतीय संघ का प्रावधान किया गया, जिसमें ब्रिटिश प्रांतों का शामिल होना अनिवार्य था, किन्तु देशी रियासतों का शामिल होना नरेशों की इच्छा पर निर्भर था।

(2) संघ तथा केन्द्र के बीच शक्तियों का विभाजन किया गया। विभिन्न विषयों की तीन सूचियाँ बनायी गयीं– संघीय सूची, प्रांतीय सूची तथा समवर्ती सूची।

(3) 1919 के अधिनियम द्वारा जो द्वैध शासन प्रांतों में लागू किया गया था, उसे केन्द्र में लागू किया गया। केन्द्रीय सरकार के विषयों को दो भागों में विभाजित किया गया– संरक्षित विषय और हस्तांतरित विषय। संरक्षित विषय गवर्नर जनरल के अधिकार क्षेत्र में रखे गये, जबकि हस्तांतरित विषयों का शासन मंत्रिपरिषद को सौंपा गया।

(4) केन्द्र में द्विसदनात्मक विधायिका की स्थापना की गयी– राज्य परिषद (उच्च सदन) तथा केन्द्रीय विधान सभा (निम्न सदन)।

(5) प्रांतों में द्वैध शासन को समाप्त कर प्रांतीय स्वायत्तता के सिद्धान्त को स्वीकार किया गया।

(6) प्रांतीय विधायिका को प्रांतीय सूची तथा समवर्ती सूची पर कानून बनाने का अधिकार दिया।

(7) प्रांतीय विधान मंडल को अनेक शक्तियाँ दी गयी। मंत्रिपरिषद को विधानमंडल के प्रति जिम्मेदार बनाया गया और वह एक अविश्वास प्रस्ताव पारित कर उसे पदच्युत कर सकती थी। विधान मंडल प्रश्नों तथा अनुपूरक प्रश्नों के माध्यम से प्रशासन पर कुछ नियंत्रण रख सकता था।

(8) इस अधिनियम के अधीन बर्मा को भारत से अलग कर दिया गया और उड़ीसा तथा सिन्ध नाम से दो नये प्रांत बनाये गये।

(9) इस अधिनियम में एक संघीय बैंक और एक संघीय न्यायालय की स्थापना का भी प्रावधान किया गया।

(10) केन्द्रीय सरकार संबंधी प्रस्ताव लागू नहीं हुए। देशीय राज्यों की अनिच्छा व उदासीनता के कारण अखिल भारतीय परिसंघ अस्तित्व में नहीं आया।

प्रांतों में सन 1937 ई० में चुनाव संपन्न होने के पश्चात द्वैध शासन समाप्त हुआ एवं पूर्ण स्वायत्तता स्थापित हुई किन्तु गवर्नर की निरंकुश शक्तियों ने इस स्वायत्तता को बेमानी कर दिया।

भारतीय स्वतंत्रता अधिनियम 1947–

माउन्टबेटन योजना के आधार पर ब्रिटिश संसद द्वारा पारित भारतीय स्वतंत्रता अधिनियम 1947 के प्रमुख प्रावधान इस प्रकार थे :–

(1) भारत तथा पाकिस्तान नामक दो डोमिनियनों की स्थापना के लिए 15 अगस्त, 1947 की तारीख निश्चित की गयी।

(2) इसमें भारत का क्षेत्रीय विभाजन भारत तथा पाकिस्तान के रूप में करने तथा बंगाल एवं पंजाब में दो–दो प्रांत बनाने का प्रस्ताव किया गया। पाकिस्तान को मिलने वाले क्षेत्रों को छोड़कर ब्रिटिश भारत में सम्मिलित सभी प्रांत भारत में सम्मिलित माने गये।

(3) पूर्वी बंगाल, पश्चिमी बंगाल और असम के सिलहट जिले को पाकिस्तान में सम्मिलित किया जाना था।

(4) भारत में महामहिम की सरकार का उत्तरदायित्व तथा भारतीय रियासतों पर महामहिम का अधिराजत्व 15 अगस्त, 1947 को समाप्त हो जायेगा।

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

(5) भारतीय रियासतें इन दोनों (भारत, पाकिस्तान) में से किसी में शामिल हो सकती थीं।

(6) प्रत्येक डोमिनियन के लिए पृथक गवर्नर जरनल होगा जिसे महामहिम द्वारा नियुक्त किया जायेगा। गवर्नर जनरल डोमिनियन की सरकार के प्रयोजनों के लिए महामहिम का प्रतिनिधित्व करेगा।

(7) प्रत्येक डोमिनियन के लिए पृथक विधानमंडल होगा, जिसे विधियाँ बनाने का पूरा प्राधिकार होगा तथा ब्रिटिश संसद उसमें कोई हस्तक्षेप नहीं कर सकेगी।

(8) डोमिनियन की सरकार के लिए अस्थायी उपबंध के द्वारा दोनों संविधान सभाओं को संसद का दर्जा तथा डोमिनियन विधानमंडल की पूर्ण शक्तियां प्रदान की गयी।

(9) इसमें गवर्नर जनरल को एक्ट के प्रभावी प्रवर्तन के लिए ऐसी व्यवस्था करने हेतु, अस्थायी आदेश जारी करने का प्राधिकार दिया गया, जो उसे आवश्यक तथा समीचीन प्रतीत हो।

(10) इसमें सेक्रेटरी ऑफ स्टेट (भारत सचिव) की सेवाओं तथा भारतीय सशस्त्र बल, ब्रिटिश थल सेना, नौसेना और वायु सेना पर महामहिम की सरकार का अधिकार क्षेत्र अथवा प्राधिकार जारी रहने की शर्तें निर्दिष्ट की गयी थी।

ब्रिटिश काल में उपर्युक्त उल्लिखित विभिन्न एक्ट एवं उनकी धाराओं के लागू होने के बाद भी स्वतंत्रता–प्राप्ति के पश्चात् हमारे राष्ट्र निर्माताओं के सामने सबसे महत्त्वपूर्ण कार्य था एक ऐसे संविधान की रचना करना जिसके माध्यम से उस आदर्श की प्राप्ति की सके जिसके लिए स्वतंत्रता सेनानियों ने लम्बे समय संघर्ष किया था।

संविधान सभा का गठन–

स्वतंत्रता प्राप्ति से पूर्व ही सन 1946 ई. में कैबिनेट मिशन भारत आया। इस योजना के अनुसार जुलाई, 1946 में संविधान सभा के चुनाव हुए। संविधान सभा के लिए कुल 389 सदस्यों (ब्रिटिश प्रांत 296 व देशी रियासतें 93) का प्रावधान रखा गया।

भारत की संविधान सभा का गठन तीन चरणों में पूरा हुआ। कैबिनेट मिशन योजना के अनुसार संविधान सभा के 296 सदस्यों का निर्वाचन जुलाई–अगस्त, 1946 में हुआ। द्वितीय चरण की शुरूआत 3 जून 1947 की विभाजन योजना से होती है। संविधान सभा का पुनर्गठन किया गया । देश का बंटवारा हो जाने के बाद संविधान निर्मात्री सभा की कुल सदस्य संख्या 324 रह गयी जिसमें 235 स्थान प्रान्तों के लिए और 89 देशी राज्यों के लिए निर्धारित थे। तृतीय चरण देशी रियासतों से सम्बन्धित था और उनके प्रतिनिधि संविधान सभा में सम्मिलित हुए। हैदराबाद ही एक ऐसी रियासत थी जिसके प्रतिनिधि सम्मिलित नहीं हुए। संविधान सभा के गठन के बाद 14 अगस्त, 1947 को जवाहरलाल नेहरू ने कहा कि "स्वाधीनता और सत्ता अपने साथ उत्तरदायित्व लाती हैं। वह उत्तरदायित्व अब इस भारत के लोगों की प्रतिनिधि, प्रभुसत्ता–सम्पन्न संविधान सभा के कन्धों पर है।"

संविधान सभा के प्रमुख सदस्य : प्रमुख संविधान निर्माता–

यह उल्लेख करना समीचीन होगा कि स्वतंत्र भारत का संविधान भारतीय नेताओं द्वारा दशकों के चिंतन मनन का परिणाम था। संविधान निर्माण पर वैचारिक मंथन लम्बे समय से एक सतत प्रक्रिया के रूप में चलता रहा, यथा– स्वराज संविधान 1895, कॉमनवेल्थ ऑफ इण्डिया बिल 1925, नेहरू रिपोर्ट 1928, कराची प्रस्ताव 1931, सप्रू कमेटी रिपोर्ट 1944। ये सभी दस्तावेज प्रमाणित करते हैं कि स्वतंत्रता प्राप्ति के साथ–साथ भारतीय नेतृत्व संविधान निर्माण के प्रति भी सजग रहा।

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

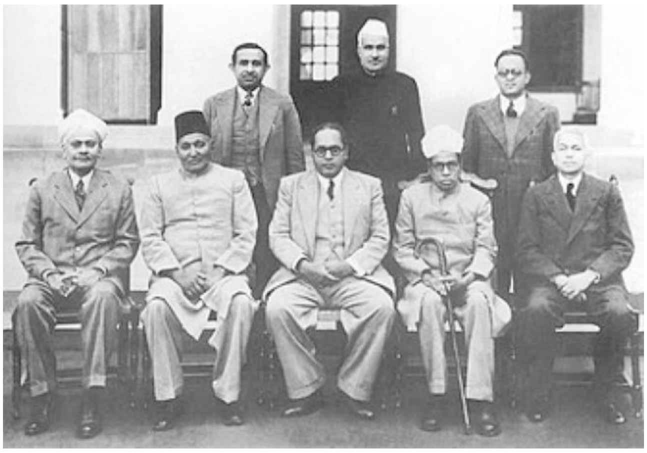

डॉ. अम्बेडकर संविधान प्रारुप समिति के सदस्यों के साथ

संविधान सभा में पण्डित जवाहरलाल नेहरू, सरदार वल्लभ भाई पटेल, डॉ. भीमराव अम्बेडकर, के. एम. मुन्शी, गोपालस्वामी आयंगर, अल्लादि कृष्णास्वामी अय्यर, पट्टाभि सीतारमैया, दुर्गाबाई देशमुख, हंसा मेहता, राजकुमारी अमृत कौर, ठाकुरदास भार्गव, मौलाना अबुल कलाम आजाद का योगदान महत्त्वपूर्ण रहा। नेहरू आदर्शवादी थे तो प्रसाद और पटेल अनुभववादी और व्यावहारिक। डॉ. अम्बेडकर कानून के प्रकाण्ड पण्डित थे तो गोपाल स्वामी आयंगर भी बहुत योग्य, तीक्ष्ण बुद्धि के धनी और अनुभवी थे। पटेल के प्रमुख परामर्शदाता के एम. मुन्शी और वी.पी. मेनन थे तो नेहरू के परामर्शदाता कृष्णास्वामी अय्यर और बी.एन. राव थे। संविधान सभा में भारत के सभी वर्गों एवं प्रदेशों का प्रतिनिधित्व सुनिश्चित करने का प्रयास किया गया।

संविधान सभा का प्रथम अधिवेशन 9 दिसम्बर, 1946 को संसद भवन के केन्द्रीय कक्ष में प्रारम्भ हुआ। डॉ. सच्चिदानंद सिन्हा को सर्वसम्मति से अस्थाई अध्यक्ष चुना गया। इसके बाद सदस्यों ने अपने प्रत्यय पत्र पेश किए तथा रजिस्टर पर हस्ताक्षर किए। 11 दिसम्बर, 1946 को कांग्रेस के अनुभवी नेता डॉ. राजेन्द्र प्रसाद संविधान सभा के स्थायी अध्यक्ष निर्वाचित हुए। संविधान निर्माण की दिशा में सबसे पहला कदम था जवाहरलाल नेहरू द्वारा प्रस्तुत 'उद्देश्य प्रस्ताव'। यह प्रस्ताव 13 दिसम्बर, 1946 को प्रस्तुत किया गया। प्रस्ताव प्रस्तुत करते हुए नेहरू ने कहा, ''मैं आपके सामने जो प्रस्ताव प्रस्तुत कर रहा हूँ उसमें हमारे उद्देश्यों की व्याख्या की गई है, योजना की रुपरेखा दी गई है और बताया गया है कि हम किस रास्ते पर चलने वाले हैं।'' उद्देश्य प्रस्ताव में भारत को एक स्वतंत्र प्रभुसत्ता–सम्पन्न गणराज्य घोषित करने की आकांक्षा व्यक्त की गई। यह भी कहा गया कि प्रभुसत्ता का वास जनता में होगा तथा भारत के सभी लोगों को सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक न्याय तथा विचार, अभिव्यक्ति, विश्वास, धर्म, उपासना और व्यवसाय की गारंटी दी जायेगी। 13 दिसम्बर से 19 दिसम्बर, 1946 तक संविधान सभा ने उद्देश्य प्रस्ताव पर विचार–विमर्श किया। 22 जवनरी, 1947 को संविधान सभा में सदस्यों ने खड़े होकर सर्वसम्मति से इस प्रस्ताव को पास किया।

उद्देश्य प्रस्ताव की स्वीकृति के बाद ही संविधान सभा ने संविधान निर्माण की समस्या के विभिन्न पहलुओं के सम्बन्ध में अनेक समितियां गठित कीं। इनमें प्रमुख समितियाँ थीं– (1) संघ संविधान समिति (2) प्रान्तीय संविधान समिति (3) संघ शक्ति समिति (4) मूल अधिकारों, अल्पसंख्यकों आदि से सम्बन्धित परामर्श समिति तथा (5) प्रारूप समिति आदि। देशी रियासतों से बातचीत करने के लिये संविधान सभा ने एक ''वार्ता समिति'' पूर्व में ही गठित कर ली थी।

संविधान सभा की परामर्श शाखा ने 17 मार्च, 1947 को संविधान की मुख्य विशेषताओं के संबंध में एक प्रश्न सूची विभिन्न प्रान्तीय विधानमण्डलों तथा केन्द्रीय विधानमण्डल के सदस्यों के पास भी भेजी ताकि वे प्रस्तावित संविधान के बारे में अपने विचार व्यक्त कर सकें। इसी समय ब्रिटिश सरकार ने 3 जून, 1947 की योजना प्रकाशित की जिसके अनुसार देश का विभाजन होना था।

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

डॉ. अम्बेडकर, डॉ. राजेन्द्र प्रसाद को संविधान का प्रारुप सौंपते हुए

अक्टूबर, 1947 में संविधान सभा के सचिवालय की परामर्श शाखा ने संविधान का पहला प्रारूप तैयार किया। इस प्रारूप के तैयार होने के पहले संविधान सभा के सचिवालय ने 3 जिल्दों में विश्व के विभिन्न संविधानों के पूर्व दृष्टान्त एकत्र कर उन्हें संविधान सभा के सदस्यों में वितरित कर दिया। संवैधानिक परामर्शदाता बी. एन. राव ने विश्व के विभिन्न संविधान विशेषज्ञों से विचार–विमर्श कर एक प्रतिवेदन भी प्रस्तुत किया।

29 अगस्त, 1947 को संविधान सभा ने 'प्रारूप समिति' की नियुक्ति की। डॉ. अम्बेडकर इस समिति के अध्यक्ष चुने गये। अन्य सदस्य थे कन्हैयालाल माणिक्य लाल मुंशी, मोहम्मद सादुल्ला, बी.एल. मित्तर, कृष्णास्वामी अय्यर, एन. गोपालास्वामी आंयगर तथा डी.पी. खेतान। बाद में मित्तर और खेतान के स्थान पर एन. माधवराय तथा टी.टी. कृष्णामाचारी को नियुक्त किया गया। 'प्रारूप समिति' का यह काम था कि वह संविधान सभा की परामर्श शाखा द्वारा तैयार किये गये संविधान के प्रारूप का परीक्षण करके विचार के लिए संविधान सभा के सम्मुख प्रस्तुत करें। 'प्रारूप समिति' ने भारत का जो प्रारूप संविधान तैयार किया वह फरवरी, 1948 को संविधान सभा के अध्यक्ष को सुपुर्द किया गया। प्रारूप संविधान के प्रकाशित होने के बाद संशोधन व सुझाव आमंत्रित किये गये। एक विशिष्ट समिति ने इन सुझावों पर विचार किया तथा प्रारूप संविधान का एक पुनर्मुद्रित संस्करण प्रकाशित किया। 15 नवम्बर, 1948 को प्रारूप संविधान पर धारावार विचार प्रारम्भ हुआ। 8 जनवरी, 1949 तक संविधान सभा 67 अनुच्छेदों पर विचार कर चुकी थी। इसे प्रथम वाचन कहा जाता है, क्योंकि इस कालावधि में संविधान पर सामान्य वाद–विवाद हुआ। 16 नवम्बर, 1949 को संविधान का 'द्वितीय वाचन' समाप्त हो गया। संविधान का तीसरा वाचन 26 नवम्बर, 1949 तक चला जब संविधान सभा द्वारा निर्मित संविधान को अंतिम रुप से पास किया गया। संविधान सभा के अंतिम दिन 24 जनवरी, 1950 को संविधान की 3 प्रतियाँ सभा पटल पर रखी गईं। एक हस्तलिखित प्रति अंग्रेजी में थी जिस पर कलाकारों द्वारा कलाकृतियाँ अंकित की गई थी। दूसरी अंग्रेजी में छपी हुई प्रति थी और तीसरी हिन्दी की हस्तलिखित प्रति थी। सभा के अध्यक्ष ने सभी सदस्यों से प्रार्थना की कि वे एक–एक करके तीनों प्रतियों पर हस्ताक्षर करें। सदस्यों ने संविधान की प्रतियों पर हस्ताक्षर किये और उसके बाद "जन–गण–मन" तथा "वन्देमातरम्" के गायन के साथ 'सभा' का संविधान सभा के रुप में समापन हो गया। 26 जनवरी, 1950 को उसका भारतीय गणराज्य की (अंतरिम) संसद के रुप में आविर्भाव हुआ।

संविधान निर्माण की प्रकिया–

संविधान निर्माण के सम्बन्ध में संविधान सभा ने सबसे पहले उद्देश्य प्रस्ताव के रुप में अपने 'विचारार्थ विषय' निर्धारित किये। यह उद्देश्य प्रस्ताव ही आगे चलकर संविधान की प्रस्तावना का आधार बना। इसके बाद संविधान सभा ने संवैधानिक समस्या के विविध पहलुओ के संबंध में विभिन्न समितियां नियुक्त की। इनमें से अनेक समितियों के अध्यक्ष या तो पण्डित नेहरू थे या सरदार पटेल। संविधान सभा के अध्यक्ष के अनुसार

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

इन दो महारथियों ने ही संविधान के मूल सिद्धान्त तय किये थे। सभी समितियों ने बड़ी निष्ठा से कार्य किया और महत्त्वपूर्ण प्रतिवेदन प्रस्तुत किए। संविधान सभा में इन प्रतिवेदनों पर विस्तार से विचार किया गया और इन प्रतिवेदनों की सिफारिशें प्रारूप संविधान के लिए आधार बनीं। प्रारूप संविधान की सतर्क छानबीन प्रारूप समिति के सदस्यों ने ही नहीं की बल्कि संविधान सभा के अन्य सदस्यों ने भी प्रारूप संविधान के एक–एक अनुच्छेद का गहराई से विवेचन किया। कहीं कहीं तो प्रत्येक वाक्य ही नहीं अपितु प्रत्येक शब्द पर बहस हुई। प्रारूप संविधान की इस विशद परीक्षा का परिणाम यह हुआ कि उसका आकार बहुत बढ़ गया। संविधान सभा सचिवालय की परामर्श शाखा ने प्रारूप समिति के विचार के लिए संविधान का जो पहला प्रारूप तैयार किया था, उसमें 243 अनुच्छेद और 13 अनुसूचियां थी। संविधान सभा की प्रारूप समिति ने जो पहला प्रारूप संविधान तैयार किया उसमें 315 अनुच्छेद और 8 अनुसूचियां थी। जब प्रारूप संविधान का दूसरा वाचन समाप्त हुआ तब अनुच्छेदों की सख्या 386 हो गई। दूसरे वाचन के बाद जब संविधान अन्तिम रुप में स्वीकार हुआ तब उसमें 395 अनुच्छेद और 8 अनुसूचियां थी। प्रारूप संविधान में संशोधन के 7635 प्रस्ताव सदन पटल पर रखे गये थे। इनमें से सदन में कुल 2473 संशोधन प्रस्तुत किये गये। भारत की जनता ने संविधाननिर्मात्री सभा की कार्यवाही में सक्रिय रुचि ली थी और दर्शक दीर्घा में 53000 दर्शकों को प्रवेश मिला।

सर्वाधिक महत्त्वपपूर्ण तथ्य यह है कि तत्कालीन भारतीय राजनीति के सर्वाधिक प्रमुख दल कांग्रेस ने संविधान सभा को अधिकाधिक प्रतिनिधि स्वरुप प्रदान करने की प्रत्येक सम्भव चेष्टा की। कांग्रेस के तो प्रायः सभी चोटी के नेता पं. नेहरू, सरदार पटेल, डॉ. राजेन्द्र प्रसाद, मौलाना आजाद, चक्रवर्ती राजगोपालाचारी, पं. गोविन्द वल्लभ पन्त, बाल गोविन्द खेर, बाबू पुरुषोत्तमदास टण्डन, के.एम. मुन्शी और आचार्य जे.बी. कृपलानी इसके सदस्य थे। कांग्रेस के ही प्रयत्नों से वैधानिक और प्रशासनिक योग्यता की दृष्टि से ख्याति प्राप्त अनेक ऐसे व्यक्तियों का संविधान सभा के लिए निर्वाचन हुआ था, जो कांग्रेस से सम्बन्धित ही नहीं थे। इनमें से कुछ थे–प्रारूप समिति के अध्यक्ष डॉ. अम्बेडकर, ए. के. अय्यर, एन.जी. आंयगर, संथानम, एम. आर. जयकर, सच्चिदानन्द सिन्हा, श्यामाप्रसाद मुखर्जी, वी. शिवाराव, डॉ. राधाकृष्णन, के.टी. शाह, एम.सी. मुखर्जी, हृदयनाथ कुंजरु आदि। प्रारूप समिति के सात सदस्यो में से केवल दो पहले के. एम. मुन्शी और बाद में टी.टी. कृष्णास्वामी कांग्रेस के सदस्य थे। एक मोहम्मद सादुल्ला मुस्लिम लीग के सदस्य थे। अम्बेडकर, खेतान, माधवराव और अय्यर निर्दलीय सदस्य थे।

नेहरु संविधान सभा के सदस्यों के साथ

इन्हीं व्यक्तियों ने सभा को तकनीकी व विधिक विशेषज्ञता प्रदान की। संविधान के मूल स्वरुप का निर्माण करने, दार्शनिक आधार देने तथा उसे उद्देश्यपूर्ण बनाने में इन व्यक्तियों तथा इनकी सामाजिक तथा व्यावसायिक पृष्ठभूमि की निर्णायक भूमिका रहीं। तेज बहादुर सप्रू और जयप्रकाश नारायण को भी संविधान सभा की सदस्यता के लिये आमंत्रित किया गया था, किन्तु सप्रू स्वास्थ्य सम्बन्धी कारणों के आधार पर इसे स्वीकार न कर सके और जयप्रकाश नारायण ने इस प्रस्ताव को स्वीकार नहीं किया। इस सम्बन्ध में संविधान सभा की सद्इच्छा का प्रमाण यह है कि संविधान सभा के जो सदस्य लीग के टिकट पर निर्वाचित हुए थे, उनमें से जिन्होंने भारत के विभाजन के बाद भारत में ही रहना पसन्द किया उन्हें भी संविधान सभा की सदस्यता प्रदान की गई। लीग के एक प्रतिनिधि मोहम्मद सादुल्ला प्रारूप समिति के भी सदस्य थे। ये तथ्य

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

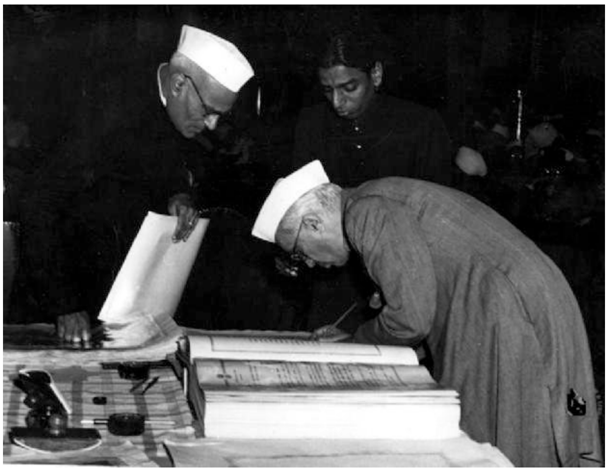

संविधान पर हस्ताक्षर करते हुए

रेखांकित करने की आवश्यकता है कि शीर्षस्थ नेताओं के साथ–साथ संविधान सभा के प्रायः सभी सदस्यों ने महत्त्वपूर्ण व सक्रिय भूमिका निभाई। सभा की बहसों के अवलोकन से स्पष्ट होता है कि इसके सदस्य विलक्षण, प्रबुद्ध, प्रतिबद्ध व परिश्रमी थे। विभिन्न विषयों पर हुई निर्भीक बहसों से ये तथ्य भी भलीभांति स्थापित होता है कि सभा में अभिव्यक्ति की पूर्ण स्वतंत्रता थी।

सम्पूर्ण संविधान निर्माण में 2 वर्ष 11 मास और 17 दिन लगे। इस कार्य पर लगभग 64 लाख (63,96,729 रु.) रुपये खर्च हए। संविधान के प्रारूप पर भी 114 दिन तक चर्चा होती रही। अपने अंतिम रुप में संविधान में 395 अनुच्छेद और 8 अनुसूचियाँ थी। संविधान के कुछ अनुच्छेद 26 नवम्बर, 1949 के दिन से लागू कर दिये गए तथा शेष अनुच्छेद 26 जनवरी के दिन के ऐतिहासिक महत्त्व के कारण 26 जनवरी, 1950 ई. से लागू किये गये।

इस पर डॉ. अम्बेडकर ने कहा कि ''अमरीका, कनाडा, दक्षिण अफ्रीका और आस्ट्रेलिया की संविधान सभाओं को अपने संविधानों की रचना में जितना समय लगा था, उसे देखते हुए भारतीय संविधान सभा ने देश के लिए बहुत शीघ्र ही संविधान बना लिया है और उसे बधाई दी जा सकती है।''

अभ्यास प्रश्न

1. रेग्यूलेटिंग एक्ट लागू होने के समय बंगाल का गवर्नर जनरल कौन था ?

   (अ) वॉरेन हिस्टिंग्ज (ब) वेलेजली

   (स) कर्जन (द) कैनिंग

2. संविधान सभा का प्रथम अधिवेशन कब हुआ ?

   (अ) 22 अक्टू. 1764 (ब) 19 जन. 1919

   (स) 05 मई 1989 (द) 09 दिस. 1946

3. सन 1919 के भारत सरकार अधिनियम से स्थापित द्वैध शासन केन्द्र की जगह प्रातों में किस अधिनियम के तहत लागू किया गया ?

   (अ) 1921 (ब) 1935

   (स) 1947 (द) 1950

4. सन 1935 के भारत सरकार अधिनियम के अनुसार प्रातों में मंत्रिमंडल कब स्थापित हुआ ?

   (अ) जुलाई, 1937 (ब) अगस्त, 1937

   (स) सितम्बर, 1937 (द) अक्तूबर, 1937

5. भारत के संविधान निर्माण की प्रक्रिया को समझाइये।

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

अध्याय–4

नेहरू की वैचारिक विरासत एवं वैज्ञानिक दृष्टिकोण

पण्डित जवाहर लाल नेहरू विलक्षण एवं बहुआयामी व्यक्तित्व के धनी थे। उच्च शिक्षित राजनेता, प्रखर वक्ता, लेखक, लोकतांत्रिक संस्थाओं और परंपराओं के प्रति अटूट विश्वास तथा उदारवादी सिद्धांतो के पोषक होने के कारण उन्हें समकालीन विश्व में अंतरराष्ट्रीय पहचान मिली। लगभग दो सदी के औपनिवेशिक शासन और शोषण के पश्चात आजाद हुए देश को एक ऐसे नेतृत्व की आवश्यकता थी जो भारत को एक नयी दिशा दे सके एवं विकास का मार्ग प्रशस्त कर सके। ऐसे समय में आजाद भारत के प्रथम प्रधानमंत्री के रूप में नेहरू ने महत्त्वपूर्ण भूमिका निभायी। इसीलिए वे आधुनिक भारत के निर्माता के रूप में प्रतिष्ठित हुए। उनके द्वारा विभिन्न अवसरों पर दिये गये सम्बोधनों, महात्मा गाँधी एवं अन्य महापुरूषों तथा अपनी पुत्री इन्दिरा को लिखे गये पत्रों, पुस्तक डिस्कवरी ऑफ इण्डिया तथा आत्मकथा में अन्तर्राष्ट्रीय जगत, भारत के भूगोल एवं इतिहास, प्राकृतिक संसाधनों के बारे में विस्तृत विवरण मिलता हैं। उन्होंने इतिहास, विज्ञान, धर्म, समाज, अर्थव्यवस्था तथा वैज्ञानिक दृष्टिकोण पर अपने विचार खुलकर प्रकट किये। आप पायेंगे कि उनका प्रगतिशील वैज्ञानिक दृष्टिकोण उनकी कृतियों और वक्तव्यों से स्पष्ट होता है तथा सुदृढ़ भारत के भविष्य के लिए उनके विचार स्पष्ट, तार्किक और अर्थपूर्ण थे। उनके द्वारा अपने कार्यकाल में लिये गये निर्णयों से यह भी स्पष्ट होता है कि उन्होंने अपने विचारों को व्यावहारिक रुप दिया।

वैज्ञानिक दृष्टिकोण–

नेहरु की नौसैनिक पोत से विहंगम दृष्टि

एक सशक्त भारत के निर्माण के लिए वैज्ञानिक दृष्टिकोण का होना अत्यंत आवश्यक था। नेहरू का विश्वास था कि भारत की समस्याओं के समाधान के लिए विज्ञान और तकनीक का विकास अति महत्त्वपूर्ण हैं। जनवरी, 1938 में भारतीय विज्ञान कांग्रेस को दिए गए अपने संदेश में उन्होंने कहा कि सिर्फ विज्ञान ही अकेले भूख, गरीबी और अशिक्षा, अंधविश्वास, मृत हो रही परम्परा एवं रीति–रिवाजों तथा संसाधनों को भारी बर्बादी से बचा सकता हैं। मार्च, 1958 में लोकसभा द्वारा पारित किए गए वैज्ञानिक नीति प्रस्ताव में यही विचार दोहराया गया। इसमें देश के आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक विकास में विज्ञान और तकनीक की

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

भूमिका को स्वीकार किया गया हैं।

उनका मानना था कि किसी व्यक्ति में वैज्ञानिक दृष्टिकोण किसी एक सच की तलाश में सीमित न होकर उसकी आन्तरिक सोच और क्रियाकलापों में परिलक्षित होनी चाहिए। किसी परंपरा पर सिर्फ इसलिए विश्वास नहीं करना चाहिए कि वह सदियों से चली आ रही हैं बल्कि उसे वैज्ञानिक दृष्टिकोण से अवश्य परखा जाना चाहिए तथा इस वैज्ञानिक दृष्टिकोण के विकास में वैज्ञानिकों को महत्त्वपूर्ण भूमिका निभानी चाहिए। वैज्ञानिक दृष्टिकोण के सम्बन्ध में नेहरू के ये विचार समय के साथ आज और भी मजबूत होकर उभरे हैं।

नेहरू विज्ञान के प्रयोग से होने वाले सामाजिक परिवर्तनों के प्रति अत्यधिक आशान्वित थे। भारतीय विज्ञान कांग्रेस के 47वें अधिवेशन में उनके उद्‌बोधन से भी यह स्पष्ट होता हैं। इस अवसर पर उन्होंने कहा कि विज्ञान में मेरी रूचि इसके प्रयोग से होने वाले सामाजिक परिवर्तनों से भी हैं। एक विकासशील देश के रूप में हमें राजनीतिक, आर्थिक तथा सामाजिक चुनौतियों का सामना करना पड़ेगा। इन समस्याओं का समाधान विज्ञान का प्रयोग किए बिना संभव नहीं हो पायेगा, उन्होंने कहा कि इतिहास यात्रा में जितना विज्ञान ने मानव जीवन को प्रभावित किया हैं उतना किसी और चीज ने नहीं किया हैं तथा विज्ञान को किसी देश की सीमाओं में नहीं बांधा जा सकता। विज्ञान किसी एक देश का न होकर पूरे विश्व के जनकल्याण के लिए हैं।

पण्डित नेहरू ने धर्म को भी वैज्ञानिक दृष्टिकोण से देखने का प्रयास किया। उनका विचार था कि धर्म ने निस्संदेह मानवता के विकास में योगदान दिया हैं लेकिन धर्म ने मानव की जिज्ञासा तथा प्रश्नों को भी सीमित कर दिया हैं। धर्म में अलौकिक शक्तियों के सिद्धांत से वे ज्यादा प्रभावित नहीं थे। उनका मत था कि इन पर मनुष्य का ज्यादा विश्वास उसकी आत्मनिर्भरता और उसकी रचनात्मक योग्यता पर विपरीत प्रभाव डालता हैं। उनके अनुसार विज्ञान की प्रगति से जीवन प्रक्रिया और प्रकृति को समझना ज्यादा आसान हैं। जैसे–जैसे ज्ञान बढ़ता हैं धर्म में संकीर्णता का दायरा कम होने लगता हैं। एक समय था जब हमारे उपयोग में आने वाले कृषि, भोजन, कपड़े तथा सामाजिक सम्बन्ध धर्म से प्रभावित थे लेकिन समय के साथ–साथ ये वैज्ञानिक अध्ययन के दायरे में आ गये।

नेहरु महान वैज्ञानिक अल्बर्ट आइन्सटाइन के साथ

नेहरू के विचारों में वैज्ञानिक दृष्टिकोण एक जीवन जीने का तरीका हैं। आज विज्ञान का प्रयोग समस्त देशों और उनके निवासियों के लिए अपरिहार्य हैं। उनका यह भी कहना था कि विज्ञान सिर्फ ज्ञान की खोज करता हैं लेकिन समाज में वैज्ञानिक दृष्टिकोण इस खोज को और आगे ले जाता है। सन 1948 ई. में नेशनल इन्स्टीट्यूट ऑफ साइन्स की आधारशिला रखते हुए उन्होंने कहा कि जीवन की समस्याओं के समाधान के लिये वैज्ञानिक पद्धतियों को अपनाया जाना सबसे उचित मार्ग हैं। इसी मार्ग को अपनाकर हम मानव जीवन और संस्थाओं का विकास कर पाएंगे। हम किसी मानव को वैज्ञानिक पद्धतियों को अपनाकर ही सही रास्ते पर चलने के लिए प्रेरित कर

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

सकते हैं। भारतीय विज्ञान कांग्रेस के सन 1955 के अधिवेशन को सम्बोधित करते हुए उन्होंने कहा कि मैं अपनी गलतियों को स्वीकारता हूँ। ऐसा करना वैज्ञानिक दृष्टिकोण के पालन करने के नजदीक हैं और एक वैज्ञानिक न होते हुए भी मुझ में वैज्ञानिक स्वभाव दृष्टिगोचर होता हैं। आने वाले समय में भारत में तकनीकी और विभिन्न शोध संस्थाओं की स्थापना, परमाणु ऊर्जा कार्यक्रम तथा अंतरिक्ष कार्यक्रम ये दर्शाते हैं कि नेहरू के वैज्ञानिक दृष्टिकोण से सम्बन्धित विचार व्यवहार में भी परिणित हुए।

नेहरू के प्रधानमंत्री काल में देश के लिए अत्यंत आवश्यक तकनीकी व्यक्तियों के प्रशिक्षण को संगठित करने के कदम तुरंत उठाए गए। सन 1952 ई0 में पाँच में से पहला आई.आई.टी. जो अमरीका के एम.आई.टी. (मैसेचुसेट्स इंस्टीट्यूट ऑफ टेक्नोलोजी) के प्रारूप पर विकसित किया जाने वाला था, की स्थापना खड़गपुर में की गई। बाद में अन्य चार आई.आई.टी मद्रास, बंबई, कानपुर और दिल्ली में स्थापित किए गए। विज्ञान की समाज कल्याण में भूमिका को दृष्टिगत रखते हुए विज्ञान पर आधारित गतिविधियों और वैज्ञानिक अनुसंधानों के लिए बजट में निरंतर वृद्धि की गई। इन गतिविधियों पर होने वाला व्यय 1948–49 के 1.10 करोड़ रूपए से बढ़ कर 1965–66 ई0 में 85.06 करोड़ हो गया। इसके फलस्वरूप वैज्ञानिकों और तकनीशियनों की संख्या 1,88,000 (1950) से बढ़ कर 7,31,500 (1965) हो गई। साथ ही, इंजीनियरिंग और तकनीकी कॉलेजों में छात्रों की संख्या 1950 ई0 के 13,000 से बढ़ कर 1965 में 78,000 हो गई। इसी प्रकार कृषि महाविद्यालयों में पढ़ने वाले छात्रों की संख्या 1950 ई0 के 2,600 से बढ़ कर 1965 में 14,900 हो गयी।

परमाणु ऊर्जा कार्यक्रम–

भारत परमाणु ऊर्जा के महत्व को समझने वाले अग्रणी देशों में रहा हैं। नेहरू समझते थे कि परमाणु ऊर्जा दुनिया के सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक जीवन में एक क्रांति लायेगी, साथ ही यह एक देश की सुरक्षा क्षमता पर भी प्रभाव डालेगी। सन 1948 के आरंभ में उन्होंने लिखा : "भविष्य उनका होगा जो परमाणु ऊर्जा पैदा कर सकेंगे। यह भविष्य का सर्वप्रमुख ऊर्जा स्रोत बनने जा रहा हैं। स्वाभाविक रूप से सैनिक सुरक्षा भी इससे जुड़ी हुई हैं।"

अगस्त, 1948 में भारत सरकार ने परमाणु ऊर्जा आयोग की स्थापना की, जिसका अध्यक्ष भारत के अग्रणी परमाणु वैज्ञानिक डॉ. होमी जहाँगीर भाभा को बनाया गया। शांतिपूर्ण ऊर्जा विकसित करने के लिए यह आयोग वैज्ञानिक अनुसंधान विभाग के तहत बनाया गया, जो सीधे प्रधानमंत्री नेहरू के निर्देशन में काम करता था। सन 1954 ई. में सरकार ने सीधा प्रधानमंत्री के नेतृत्व में एक अलग परमाणु विभाग गठित किया, जिसके सचिव डॉ. होमी जहाँगीर भाभा बनाए गए। भारत के पहले परमाणु रिएक्टर अप्सरा, जो एशिया का भी पहला रियेक्टर था, ने बंबई में अगस्त, 1956 में काम करना शुरू कर दिया। भारत के अत्याधुनिक और अतिविकसित परमाणु ऊर्जा कार्यक्रम के तहत स्थापित परमाणु ऊर्जा संयंत्रो ने कुछ ही वर्षों में विद्युत का उत्पादन भी प्रारम्भ कर दिया। हालांकि भारत परमाणु ऊर्जा के शांतिपूर्ण प्रयोग के प्रति समर्पित था, परंतु इस क्षमता का उपयोग आसानी से परमाणु बम बनाने के लिए भी किया जा सकता था। आने वाले समय में भारत ने यह कार्य किया तथा आज भारत विश्व का एक प्रमुख परमाणु शक्ति सम्पन्न राष्ट्र हैं।

अंतरिक्ष अनुसंधान–

भारतीय अन्तरिक्ष कार्यक्रम डॉ विक्रम साराभाई की संकल्पना है, जिन्हें भारतीय अन्तरिक्ष कार्यक्रम का जनक कहा गया हैं। वे वैज्ञानिक कल्पना एवं राष्ट्रनायक के रूप में जाने जाते हैं। सन 1957 ई में स्पूतनिक के प्रक्षेपण के बाद, उन्होंने कृत्रिम उपग्रहों की उपयोगिता को भाँपा। भारत के प्रथम प्रधानमंत्री जवाहर लाल नेहरू, जिन्होंने भारत के भविष्य में वैज्ञानिक विकास को अहम माना, सन 1961 ई. में अंतरिक्ष अनुसंधान को

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

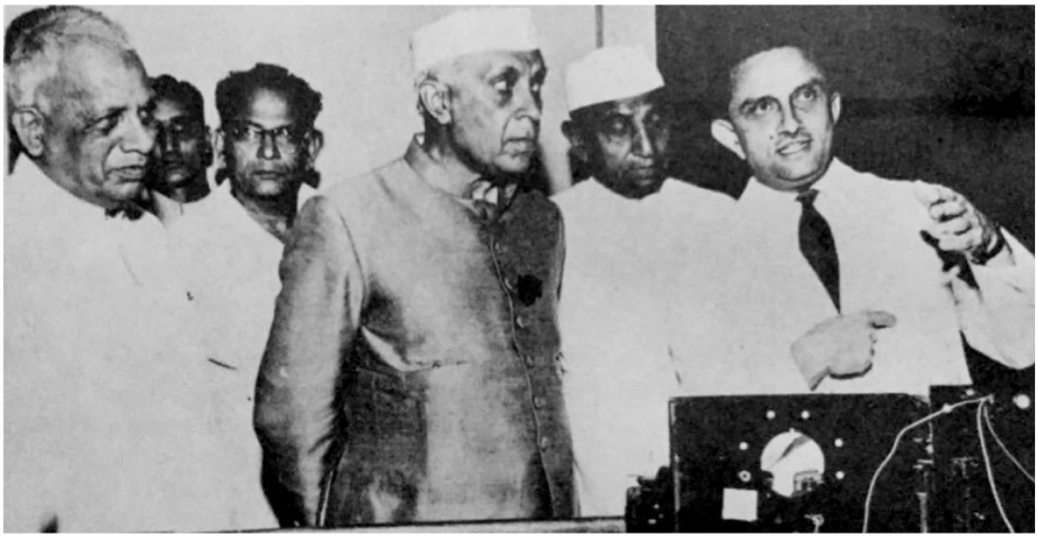

नेहरु प्रसिद्ध वैज्ञानिक डॉ. विक्रम साराभाई के साथ

परमाणु ऊर्जा विभाग की देखरेख में रखा। परमाणु उर्जा विभाग के निदेशक डॉ. होमी जहाँगीर भाभा ने सन 1962 ई. में 'अंतरिक्ष अनुसंधान के लिए भारतीय राष्ट्रीय समिति' (इनकोस्पार) का गठन किया, जिसमें सभापति डॉ॰ साराभाई को बनाया गया।

भारतीय अंतरिक्ष कार्यक्रम ने देशी तकनीक की आवश्यकता, कच्चे माल एवं तकनीक आपूर्ति में भावी अस्थिरता की संभावना को भाँपते हुए, प्रत्येक माल आपूर्ति मार्ग, प्रक्रिया एवं तकनीक को अपने अधिकार में लाने का प्रयत्न किया। जैसे–जैसे भारतीय रोहिणी उपग्रह कार्यक्रम ने और अधिक संकुल एवं वृहताकार रॉकेट का प्रक्षेपण जारी रखा, अंतरिक्ष कार्यक्रम बढ़ता गया और इसे परमाणु उर्जा विभाग से अलग कर, स्वतंत्र सरकारी विभाग बना दिया गया। सन 1969 ई0 में भारतीय अंतरिक्ष अनुसंधान संगठन का गठन तथा जून, 1972 में अंतरिक्ष विभाग की स्थापना की गई।

डॉ॰ साराभाई ने टेलीविजन के सीधे प्रसारण जैसे बहुल अनुप्रयोगों के लिए प्रयोग में लाए जाने वाले कृत्रिम उपग्रहों की सम्भावना के सन्दर्भ में नासा के साथ प्रारंभिक अध्ययन में हिस्सा लिया और अध्ययन से यह स्पष्ट हुआ कि प्रसारण के लिए यही सबसे सस्ता और सरल साधन हैं। प्रारम्भ से ही, उपग्रहों को अंतरिक्ष में स्थापित करने के लिए साराभाई और इसरो ने मिलकर एक स्वतंत्र प्रक्षेपण वाहन का निर्माण किया। यह प्रक्षेपण वाहन कृत्रिम उपग्रहों को कक्ष में स्थापित करने एवं भविष्य में वृहत प्रक्षेपण वाहनों में निर्माण के लिए आवश्यक अभ्यास उपलब्ध कराने में सक्षम था। रोहिणी श्रेणी के साथ ठोस मोटर बनाने में भारत की क्षमता को परखते हुए, अन्य देशो ने भी समांतर कार्यक्रमों के लिए ठोस रॉकेट का उपयोग बेहतर समझा। इसरो ने कृत्रिम उपग्रह प्रक्षेपण वाहन (एस.एल.वी.) की आधारभूत संरचना एवं तकनीक का निर्माण प्रारम्भ कर दिया। अमेरिका के स्काउट रॉकेट से प्रभावित होकर, वाहन को चतुर्स्तरीय ठोस वाहन का रूप दिया गया।

आजादी प्राप्ति के पश्चात् के दो दशकों में भारत में अंतरिक्ष कार्यक्रम के क्षेत्र में हुई प्रगति से सहज ही अनुमान लगाया जा सकता हैं कि जिस देश को स्वतंत्र हुए कुछ समय ही बीता हो उसे नीति नियंताओं एवं युग दृष्टाओं के रूप में ऐसे व्यक्तित्वों का योगदान मिला जिन्होंने उच्च कोटि के अंतरिक्ष अनुसंधान में सहयोग किया और आज भारत को विश्व के चुनिंदा देशों की पंक्ति में ला खड़ा किया जिसकी बदौलत आज भारत भू–स्थिर कक्षा में GSLV, मंगलयान तथा चन्द्रयान जैसे अत्याधुनिक अभियान करने में सक्षम हुआ हैं।

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

निस्संदेह सामाजिक एवं धार्मिक विषमताओं से परे विज्ञान के क्षेत्र में यह प्रगति अभूतपूर्व थी तथा नेहरू के वैज्ञानिक दृष्टिकोण के धरातल पर साकार होने का सर्वोत्कृष्ट उदाहरण थी।

लोकतंत्र सम्बन्धी विचार–

पण्डित जवाहर लाल नेहरू भारत के प्रथम प्रधानमंत्री के साथ–साथ वह व्यक्ति थे जिन्होंने इस विविधता से परिपूर्ण देश में लोकतंत्र के बीज बोए। उनका मत था कि भारत में धर्म, जाति, प्रजाति, तथा लिंग पर आधारित भेदभाव की कोई जगह नहीं होनी चाहिए। आजादी के पूर्व तथा उसके बाद के उनके विभिन्न सम्बोधनों में व्यक्त किए गए लोकतंत्र सम्बन्धी विचारों की छाया हम भारतीय संविधान की प्रस्तावना, मौलिक अधिकारों एवं अन्य प्रावधानों में सहज ही देख सकते हैं। उनके सम्बोधनों में सामाजिक एवं आर्थिक न्याय, विधि के समक्ष समानता, अवसरों की समानता, विचारों को प्रकट करने की स्वतंत्रता तथा धार्मिक विश्वासों को मानने की स्वतंत्रता सम्बन्धी बातें प्रायः देखी जाती हैं।

प्रजातंत्र के सम्बंध में उनका मत था कि 'जो लोग ऊपरी चोटी पर हैं और जो लोग नीचे जमीन पर हैं– उनके बीच बहुत बड़ी खाई हैं। अगर हम प्रजातंत्र लाना चाहते हैं, तो यह अनिवार्य हो जाता हैं कि इस खाई को पार किया जाए। वास्तव में, जहाँ तक अवसरों का सम्बन्ध हैं, जहाँ तक रहन–सहन की स्थिति का सम्बन्ध हैं–और जहाँ तक जीवन की आवश्यकताओं का सम्बन्ध हैं– उन्हें अधिक से अधिक नजदीक लाया जाए।' इस मत से स्पष्ट होता हैं कि वे प्रजातांत्रिक मूल्यों में आमजन में अवसरों की समानता को अत्यधिक महत्व देते थे।

नेहरू राजनीतिक लोकतंत्र के साथ–साथ आर्थिक लोकतंत्र के पक्षधर थे। उनके अनुसार इसके बिना देश का उचित आर्थिक विकास संभव नहीं हैं। 25 फरवरी, 1956 को संसदीय लोकतंत्र विषय पर आयोजित सेमीनार के अवसर पर उन्होंने कहा कि "भूतकाल में लोकतंत्र का अर्थ मुख्य रूप से राजनीतिक लोकतंत्र के रूप में ही देखा जाता रहा हैं जिसमें प्रत्येक व्यक्ति अपने मताधिकार का प्रयोग करता हैं, लेकिन एक ऐसे व्यक्ति के लिए उस मताधिकार के कोई मायने नहीं हैं यदि वह आर्थिक रूप से पिछड़ा और भूखा हैं।"

पंडित नेहरू का लोकतंत्र सहभागिता के सिद्धांत पर आधारित था जिसमें सत्ता का विकेन्द्रीकरण एक महत्त्वपूर्ण अंग था। इसे साकार करने के लिए सन 1952 ई0 में उन्होंने सामुदायिक विकास कार्यक्रम की शुरूआत की तथा बलवंत राय मेहता की अध्यक्षता में एक समिति गठित की जिसने नवंबर, 1957 में अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की जो त्रिस्तरीय पंचायती राज व्यवस्था की स्थापना का आधार बनी।

नेहरु 2 अक्टूबर, 1959 को पंचायती राज की स्थापना के अवसर पर नागौर, राजस्थान में

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

उल्लेखनीय हैं कि 2 अक्टूबर, 1959 को राजस्थान के नागौर जिले में त्रिस्तरीय पंचायती राज व्यवस्था की नींव रखी गयी। इस अवसर पर श्री नेहरू ने अपने सम्बोधन में कहा कि ''लोकतंत्र की जड़ें भारत के लिए अनजानी नहीं हैं, यह हमारी प्राचीन पंचायत व्यवस्था में भी दृष्टिगोचर होती हैं। जैसे राजनीतिक व्यवस्था में सभी मत देने के अधिकारी हैं, आर्थिक मामलों में सबके पास समान अवसर हैं वैसे ही प्रत्येक पंचायत में सभी समान होंगे तथा महिला एवं पुरूष में कोई भेदभाव नहीं किया जायेगा।''

पंडित नेहरू को भारत में सही अर्थों में लोकतंत्र की स्थापना का श्रेय जाता हैं। उनके द्वारा लोकतंत्र के ऐसे बीजों का रोपण किया गया जिनका लाभ आज की पीढ़ी उठा रही हैं। लोकतंत्र की स्थापना में उनके योगदान का मूल्यांकन करने के लिए आवश्यक हैं कि हम 20वीं शताब्दी में औपनिवेशिक सत्ता से स्वतंत्र हुए विश्व के विभिन्न देशों की वर्तमान व्यवस्था का मूल्यांकन करें। हम पाते हैं कि जहाँ अधिकांश देश अपनी आंतरिक समस्याओं से ग्रस्त हैं तथा वे सही अर्थों में लोकतंत्र की स्थापना नहीं कर पाये, वहीं भारत आज नेहरू की बदौलत ही विश्व का विशालतम सफल लोकतंत्र हैं।

नेहरु की आर्थिक दृष्टि : लोकतांत्रिक समाजवाद–

भारत में व्याप्त सामाजिक–आर्थिक असमानता के समापन व पूँजीवादी दोषों के निराकरण हेतु नेहरू ने भारत में समाजवादी समाज की स्थापना पर बल दिया। पण्डित नेहरू ने प्रारम्भ में ही यह समझ लिया था कि बिना समाजवाद लाए भारतीय अर्थव्यवस्था में निहित दोषों को दूर नहीं किया जा सकता। पण्डित नेहरू के समाजवादी विचार उनकी पुस्तक 'विदर इंडिया' (Whither India) में मिलते हैं। सन 1927 ई0 की रुस यात्रा में नेहरू को समाजवादी विचारधारा ने अत्यधिक प्रभावित किया। उनके लिये समाजवाद का अर्थ समानता से था। लेकिन नेहरू अच्छी तरह जानते थे कि एकदम से पूँजीवाद को नष्ट कर समाजवाद नहीं लाया जा सकता। अतः इसके लिये उन्होंने कठोर उपायों का सहारा न अपनाकर उदार तरीके अपनाने पर बल दिया।

15 दिसम्बर, 1952 को लोकसभा में उद्बोधन देते हुए पण्डित नेहरू ने स्पष्ट शब्दों में कहा ''हमें अपने देश को संघर्ष से अपने लक्ष्यों की ओर बढ़ाने का विचार नहीं करना चाहिए। हमारी बहुत सी चीजें शांतिपूर्ण तरीके से ही हासिल हुई हैं और मुझे ऐसा कोई कारण नहीं दिखाई देता हैं कि हम इस तरीके को छोडकर हिंसा का तरीका अपना लें। मुझे पूरा यकीन हैं कि अगर हमने हिंसात्मक तरीके से अपने उद्देश्यों और लक्ष्यों को, जो भले ही कितने ऊँचे हों, प्राप्त करने की कोशिश की तो हमें बहुत देर लगेगी और उल्टा हम उन्हीं बुराइयों को बढावा देंगे जिनसे हम लड़ रहे हैं। हिन्दुस्तान एक बडा देश ही नहीं हैं बल्कि यहाँ बहुत सी विविधता एवं अनेकता भी हैं। अगर यहाँ किसी ने तलवार उठाई तो यह लाजमी हैं कि कोई दूसरा तलवार लेकर उसका मुकाबला करने उठ खड़ा होगा। तलवार का इस तरह का टकराव नीचे गिरकर एक निरुद्देश्य हिंसा में बदल जायेगा। इससे राष्ट्र की जो सीमित शक्तियाँ हैं, वे या तो बहुत बँट जायेगी या फिर बहुत दुर्बल होती जायेंगी।''

पण्डित नेहरू ने लोकतांत्रिक मार्ग को इस संदर्भ में प्रतिष्ठित करते हुए कहा कि ''शान्तिपूर्ण तरक्की ही अंततः लोकतांत्रिक प्रगति का रास्ता हैं। अंतिम लक्ष्य आर्थिक लोकतंत्र हैं, जिसमें कि गरीब और अमीर का भेद और उन लोगो का अंतर खत्म हो जिनमें से कुछ के पास अवसर हैं और दूसरे वे जिनके पास किसी तरह के अवसर नहीं हैं या बहुत थोड़े हैं। इस लक्ष्य के रास्ते की हर रुकावट को हटा देना होगा, भले ही यह काम दोस्ती और सहकार के जरिये हो या चाहे कानून और सरकार के जोर से हो।

नेहरू ने समाजवाद को भारतीय सामाजिक, आर्थिक समस्याओं का एकमात्र उपाय बताया। समाजवाद सभी प्रकार के शोषण से मुक्ति का मार्ग हैं। नेहरू ने कहा 'मुझे विश्वास हैं कि भारत की समस्याओं का

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

समाधान समाजवाद में हैं और जब मैं इस शब्द को प्रयोग करता हूँ तो मैं इसे केवल अस्पष्ट और मानववादी के रूप में नहीं अपितु वैज्ञानिक और आर्थिक दृष्टि से देखता हूँ। समाजवाद एक आर्थिक सिद्धान्त के अतिरिक्त भी और कुछ हैं। यह एक जीवन का दर्शन हैं और इसी कारण मुझे प्रिय हैं। मुझे गरीबी, बेरोजगारी और भारतीय लोगों की दुर्दशा को समाप्त करने के लिये समाजवाद के अतिरिक्त अन्य कोई मार्ग दिखाई नहीं पड़ता।''

पण्डित नेहरू ने समाजवाद की व्याख्या भारतीय संदर्भ में विशिष्ट प्रकार से की। उन्होंने समाजवाद का अन्धानुकरण नहीं किया अपितु देश में परिस्थितियों के अनुसार ही समाजवाद के स्वरुप की बात कही। सन 1929 ई0 में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के अधिवेशन में अध्यक्षीय भाषण में नेहरू ने स्पष्ट शब्दों में कहा कि हमें यह महसूस करना चाहिए कि समाजवाद का दर्शन सारी दुनिया के समाज की संरचना में धीरे–धीरे व्याप्त हो गया हैं। विवाद के केवल दो ही बिन्दु हैं, एक शान्ति और दूसरा इसे पूर्ण प्रभावी बनाए जाने हेतु अपनाए जाने वाली विधि। भारत को भी गरीबी और असमानता को समाप्त करने के लिए समाजवाद को अपनाना होगा। हम भारतीय सन्दर्भ में इसे अपने तरीके से बुद्धिमतापूर्ण रुप में अपना सकते हैं। हमारा आर्थिक कार्यक्रम मानवीय दृष्टिकोण पर आधारित होना चाहिए तथा धन की कीमत पर व्यक्ति का बलिदान नहीं करना चाहिए। यदि एक उद्योग श्रमिकों की भूख मिटाये बिना नहीं चल सकता तो उसे बन्द कर देना चाहिए। इस प्रकार जहाँ नेहरू एक ओर लोकतंत्र के प्रबल समर्थक थे वहीं दूसरी ओर उन्होंने समाजवाद की स्थापना पर बल दिया। इस लोकतांत्रिक समाजवाद के प्रति नेहरू आजीवन समर्पित रहे। उनके अनुसार आर्थिक लोकतंत्र के बिना राजनीतिक लोकतंत्र निरर्थक हैं तथा राजनीतिक लोकतंत्र ही समाजवाद का माध्यम बन सकता हैं।

इस धारणा को स्पष्ट करते हुए नेहरु ने कहा कि इस व्यवस्था में पूँजी और अन्य आर्थिक संसाधन पूँजीपति वर्ग के हाथों में केन्द्रित नहीं होंगे वरन यह व्यवस्था की जायेगी कि देश की वास्तविक पूँजी और साधनों पर जनता का प्रभावी नियंत्रण हो। लोकतांत्रिक समाजवाद की अवधारणा में उन्होंने जनता के राजनीतिक अधिकारों की मान्यता, आर्थिक और सामाजिक न्याय, संसाधनों के केन्द्रीकरण का निषेध तथा उत्पादन व वितरण की न्याय प्रणाली को सुनिश्चित किए जाने पर बल दिया। उन्होंने लोकतांत्रिक समाजवाद को भारत के स्वर्णिम भविष्य की आधारशिला माना।

पंथनिरपेक्षता सम्बंधी विचार–

नेहरू भारतीय पंथनिरपेक्षतावाद के वास्तविक प्रणेता थे। स्वतंत्रता प्राप्ति के पहले तथा बाद में वे ही पंथनिरपेक्ष विचारधारा के महानतम प्रतिपादक हुए हैं। अमेरिकी राजदूत चेस्टर बाउल्स को स्वयं नेहरू ने कहा था कि यदि वह आज भी मर जायें तो इस पंथनिरपेक्ष राज्य का निर्माण उनकी (नेहरू की) सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण उपलब्धि मानी जायेगी। उनके लिये पंथनिरपेक्षता का अर्थ था–सभी धर्मों के प्रति समान आदरभाव। उनकी पंथनिरपेक्षता का मूलाधार थाः मानव व्यक्तित्व एवं नैतिकता में विश्वास, लोकतंत्र में आस्था, सत्य बोध के प्रति जिज्ञासा एवं अन्तःकरण की स्वतंत्रता।

नेहरू ने पंथनिरपेक्ष भारतीय संविधान का निर्माण कराया तथा पंथनिरपेक्ष राज्य की रचना करायी। वे पंथनिरपेक्षता को राष्ट्र की एकता का आधार मानते थे। फूट और साम्प्रदायिकता के कारण ही भारतवर्ष को अपमान, पराजय और विघटन का सामना करना पड़ा हैं। वे यह कहते थे कि इतिहास में समय–समय पर और लम्बी अवधियों तक घोर कलह में डूबे रहना और अलग–अलग रहने की भावना हमारे दुर्भाग्य का कारण रहा हैं जिसके परिणामस्वरूप भारतवर्ष की शक्ति आपसी लड़ाई–झगड़े में ही नष्ट हो गयी। इस देश में प्रत्येक क्षेत्र–कला, साहित्य, शिल्प, दर्शन आदि में अनेक महापुरूष हुए, किन्तु आपसी कलह ने सब कुछ नष्ट कर

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

दिया। इस कलह के अनेक कारण थे, किन्तु उनमें धर्म की भूमिका बड़ी महत्त्वपूर्ण रही हैं। धर्म की आड़ में ही भारतवर्ष का विभाजन हुआ। इस कलह–कारक तत्व को दूर रखने के लिए संविधान में पंथनिरपेक्षता को अपनाया गया।

पारस्परिक कलह और साम्प्रदायिकता को मिटाने का एकमात्र मार्ग यह हैं कि (1) हम अपने धार्मिक मतभेदों से ऊपर उठकर सभी धर्मों के प्रति आदर भाव रखना सीखें, (2) सभी धर्मों को राज्य समान एवं सम्मान के भाव से देखें (3) राज्य का अपना कोई धर्म न हो तथा वह किसी धर्म विशेष को दूसरे धर्मों की तुलना में वरीयता प्रदान नहीं करे, (4) प्रत्येक नागरिक को अन्तःकरण, पूजा, उपासना एवं धर्म प्रचार की स्वतंत्रता हो। (5) धर्म एवं राजनीति को दूर–दूर रखा जाय तथा (6) धर्म के नाम पर किसी को समाज की शान्ति भंग करने अथवा नैतिकता का उल्लंघन करने का अधिकार नहीं हो।

नेहरू के अनुसार देश ने राजनीतिक एकीकरण को तो प्राप्त कर लिया हैं, किन्तु भावनात्मक एकीकरण प्राप्त करना बाकी हैं। इसका अर्थ यह हैं कि सभी नागरिक विविधताओं के साथ अपने आपको भावात्मक रूप से एक समझें। भारतीय संविधान में इन्हीं विशेषताओं को स्थान प्रदान किया गया हैं। उनका मूल लक्ष्य साम्प्रदायिक सद्भाव एवं सहिष्णुता की स्थापना के द्वारा राष्ट्रीय एकता को बनाये रखना तथा विकसित करना हैं।

नेहरू की पंथनिरपेक्षता की धारणा उदार, व्यापक एवं विकासमान हैं। वे पंथनिरपेक्ष राज्य से पंथनिरपेक्ष समाज की ओर बढ़ना चाहते थे। इस दिशा में उन्हें काफी सफलता भी मिली। उनके बाद सभी राजनीतिक दलों, सरकारों एवं सर्वोच्च न्यायालय ने पंथनिरपेक्षता को भारतीय राजव्यवस्था का एक आधारभूत स्तम्भ मान लिया। पंथनिरपेक्षता राष्ट्रीय एकता का ही दूसरा नाम समझा जाने लगा हैं।

राष्ट्रवाद सम्बन्धी विचार–

नेहरू ने राष्ट्रवाद पर भी अपने विचार मुखर रूप से प्रस्तुत किए। एफ्रो–एशियाई देशों में साम्राज्यवादी शक्तियों के खिलाफ चले स्वतंत्रता आन्दोलनों के वे समर्थक थे।

राष्ट्रवाद को वे एक अन्तर्राष्ट्रीय वृहद परिप्रेक्ष्य में देखते थे। उन्होंने कहा था कि 'राष्ट्रवाद एक विचित्र वस्तु हैं, जो देश के इतिहास के किसी खास मुकाम पर तो जीवन, उन्नति, शक्ति और एकता प्रदान करती हैं, लेकिन साथ ही इसको सीमित कर देने की भी प्रवृति हैं, क्योंकि आदमी यह सोचने लगता हैं कि मेरा देश बाकी दुनिया से भिन्न हैं। इस तरह देखने का नजरिया बदलता जाता हैं और आदमी अपने ही संघर्षों और अच्छाइयों और बुराइयों के सोचने में फँसा रहता हैं और दूसरे विचार उसके सामने आते ही नहीं। नतीजा यह होता हैं कि वही राष्ट्रवाद जो किसी मानव की उन्नति का प्रतीक होता हैं, मानसिक विकास के अवरुद्ध होने का प्रतीक बन जाता हैं।'

राष्ट्रवाद के सम्बन्ध में उनके विचारों में स्पष्टता थी। वे कहा करते थे कि 'राष्ट्रीय मनोवृति बहुत ही जटिल होती हैं। हम में से ज्यादातर लोग यह समझते हैं कि हम बड़े न्यायी और निष्पक्ष हैं। हमेशा गलती दूसरा मुल्क ही करता हैं। हमारे दिमाग में कहीं न कहीं यह इत्मीनान छिपा रहता हैं कि हम वैसे नहीं हैं, जैसे दूसरे लोग हैं, हममें और दूसरों में जरूर फर्क हैं– यह दूसरी बात हैं कि शराफत की वजह से हम बराबर उस बात को न कहे।'

राष्ट्रीय एकता को एक नये परिप्रेक्ष्य में देखते हुए उन्होंने साम्प्रदायिकता पर भी गहरा प्रहार किया। वे इसे देश की एकता के लिये घातक मानते थे। उनका मत था कि 'साम्प्रदायिकता के साथ राष्ट्रवाद जीवित नहीं रह सकता। राष्ट्रवाद का मतलब हिन्दु राष्ट्रवाद या सिख राष्ट्रवाद कभी नहीं होता। ज्योंही आप हिन्दू,

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

सिख, मुसलमान की बात करते हैं, त्योंही आप हिन्दुस्तान के बारे में बात नहीं कर सकते। हरेक को अपने से यह सवाल पूछना होगा : मैं भारत को क्या बनाना चाहता हूँ–एक देश, एक राष्ट्र या कि दस–बीस–पच्चीस राष्ट्र–टुकड़ों–टुकड़ों में बँटा हुआ जिसमें कोई ताकत न हो और जरा से झटके से छोटे–छोटे टुकड़ों में बिखर जाये।'

अगर उन देशों में भी, जहाँ नये विचारों और अंतर्राष्ट्रीय ताकतो का जोरदार असर पड़ा हैं, राष्ट्रीयता की भावना इतनी आम हैं, तो हिन्दुस्तान के लोगों के दिमागों पर उनका ज्यादा असर होना लाजमी हैं। कभी–कभी हमें कहा जाता हैं कि हमारी राष्ट्रीयता इस बात की निशानी हैं कि हम लोग पिछड़े हुए लोग हैं और हमारे दिल संकुचित हैं। जो लोग हमसे इस तरह की बाते करते हैं, शायद उनका ख्याल हैं कि अगर हम अंग्रेजी सल्तनत के भीतर एक छोटे हिस्सेदार की हैसियत कुबुल कर लें, तो सच्ची अंतर्राष्ट्रीयता की भावना की जीत होगी। वे यह समझते दिखाई नहीं पड़ते कि इस खास किस्म की और महज नाम की अंतर्राष्ट्रीयता एक संकुचित अंग्रेजी राष्ट्रीयता का फैलाव भर हैं। फिर भी, राष्ट्रीयता की भावना चाहे कितनी भी गहरी हो, सच्ची अंतर्राष्ट्रीयता को कुबुल करने में, और संसार व्यापी संगठन और राष्ट्रीय संगठन के मातहत रहने के मामले में, हिन्दुस्तान बहुत सी और कौमों के मुकाबले में आगे बढ़ गया हैं।

नेहरू का अन्तर्राष्ट्रीयवाद–

नेहरू के वैचारिक दृष्टिकोण में अन्तर्राष्ट्रीय स्वरूप स्पष्ट दिखाई देता हैं। वे राष्ट्रीय उदारवाद तथा सामाजिक प्रगति के उन विचारों से अत्यधिक प्रभावित थे जिन्होंने एशिया तथा अफ्रीका के स्वतंत्रता आंदोलनों को प्रभावित किया था। नेहरू ने सन 1927 ई0 में कहा कि कांग्रेस को अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों से सम्बन्धित नीति बनानी चाहिए। उन्हीं के प्रयासों का परिणाम था कि कांग्रेस भारत के स्वतंत्रता संघर्ष को वैश्विक अंग मानने लगी। उनके अनुसार भारतीयों को आदर्श तथा नैतिकता को हर संघर्ष की पृष्ठभूमि में रखना चाहिए जैसा कि अमेरिकी राष्ट्रपति अब्राहिम लिंकन ने कहा था कि ये बिल्कुल भी उचित नहीं होगा कि आधा विश्व दास हो तथा आधा स्वतंत्र। यहाँ तक कि उनका राष्ट्रवाद भी मानवीयता से ओत–प्रोत था जिसे किसी देश की सीमाओं से नहीं बाँधा जा सकता। गाँधीजी कहा करते थे कि उनका अन्तर्राष्ट्रीयवाद का विचार राष्ट्रवाद जितना ही प्रभावी था। इतिहास और दर्शन के विशद ज्ञान के कारण वे विश्व की समस्याओं को आसानी से समझ पाते थे। उनका स्पष्ट मत था कि पूर्व और पश्चिम में मुख्य अंतर औद्योगिक विकास का हैं। इस औद्योगीकरण के कारण ही यूरोपीय महत्त्वाकांक्षाओं के सामने विश्व बहुत छोटा हो गया। नेहरू का अन्तर्राष्ट्रीयवाद लोकतंत्र और समाजवाद पर आधारित था। वे फ्रांसीसी क्रांति से अत्यधिक प्रभावित थे क्योंकि इस क्रांति ने समाज और धर्म की कई रूढ़ियो को चोट पहुँचायी थी। उनकी इसी वृहद सोच के कारण ही उनका मत था कि लोकतंत्र विज्ञान के साथ हाथ मिलाकर संकीर्ण धार्मिक कुरीतियों को समाप्त करेगा और साम्प्रदायिकता पर कुठाराघात करेगा। इसी संदर्भ में विचारकों ऑगस्ट कॉमटे तथा जेम्स मिल्स के विचारों से नेहरु प्रभावित प्रतीत होते हैं जो स्वतंत्रता तथा मानवीयता के पक्षधर थे। नेहरू के लेखों में कार्ल मार्क्स एवं एंगेल्स के विचारों का उल्लेख मिलता हैं। नेहरू समाजवादी विचारों से अत्यधिक प्रभावित थे। रूस द्वारा लम्बे समय तक अन्तर्राष्ट्रीय मामलों में पालन किए गये शांति के मार्ग से भी वे प्रभावित थे। नेहरू ने यूरोप के साम्राज्यवाद और उपनिवेशवाद पर टिप्पणी करते हुए कहा कि पूँजीवाद के प्रभाव के कारण यूरोप एशिया पर पूर्णतया हावी हो गया। उनके अनुसार जैसे–जैसे उपनिवेशों के निवासियों के हितों को दबाया जायेगा वैसे–वैसे ही विदेशी शासन के प्रति असंतोष बढ़ता जायेगा। उन्होंने कई एशियाई देशों की यात्रा की और उनसे सम्पर्क बनाये रखा क्योंकि औपनिवेशीकरण के कारण ही अधिकांश देशों की समस्याएँ समान थी और उनसे मैत्री सम्बन्धों के कारण किसी भी घटना के समय वे संयुक्त रूप से प्रतिक्रिया जाहिर कर सकते थे। इन

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

नेहरु 1949 में एशियन कॉन्फ्रेन्स के अवसर पर इण्डोनेशिया के प्रतिनिधि के साथ

एशियाई देशों की एकता के प्रयास सन 1947 ई0 के दिल्ली में हुए एफ्रो एशियन कांफ्रेस में देखने को मिलते हैं। इस अवसर पर नेहरू ने कहा कि औपनिवेशिक शासन ने हमारे आपसी सम्बन्धों को ठेस पहुँचाई हैं लेकिन अब हमारे चारों ओर खड़ी ये दीवार जल्द ही गिर जायेगी और हम प्राचीन मित्रों की तरह फिर मिलेंगे। उनका मत था कि एशिया को वैश्विक जगत में प्रमुख भूमिका निभानी चाहिए और इस परमाणु युग में एशियाई देश शांति स्थापना में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा सकते हैं। जनवरी, 1949 में उन्होंने हॉलैण्ड से इंडोनेशिया की स्वतंत्रता का समर्थन करके यह जता दिया कि किसी भी गलत कदम के विरोध के लिये समस्त विश्व एक हो जायेगा। इस प्रकार ये स्पष्ट होता हैं कि अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों के समक्ष एवं अन्तर्राष्ट्रीयवाद में नेहरू का कोई सानी नहीं था।

वह युद्ध की विभीषिका के सख्त खिलाफ थे। सन 1927 ई0 के कांग्रेस के मद्रास अधिवेशन में उन्होंने शांति पर बल दिया और कहा कि हर युद्ध एक अन्तर्राष्ट्रीय त्रासदी हैं। क्योंकि यह अत्याचार और विध्वंस को जन्म देता हैं। वह यह मानते थे कि युद्ध राष्ट्र ही नहीं आम मनुष्य को भी प्रभावित करता हैं। उनका मत था कि तत्कालीन यूरोप घृणा और भय से भरा हुआ था। यूरोप का हर देश दूसरे देश से नफरत करता हैं और एक दूसरे को मिटाना चाहता हैं। यही कारण था कि नेहरु स्वतंत्रता, समानता और न्याय के सिद्धांतो की पुरजोर वकालत किया करते थे और यह चाहते थे कि अन्तर्राष्ट्रीय समाज में संघर्ष का स्थान सहयोग को लेना चाहिए।

नेहरू के अनुसार सभी देशों का निशस्त्रीकरण होना चाहिए। एक देश के द्वारा दूसरे देश को प्रताड़ित नहीं करना चाहिए। संसाधनों का उचित वितरण होना चाहिए। देशों और समूहों में कोई धार्मिक एवं प्रजातीय भेदभाव नहीं होना चाहिए।

अन्तर्राष्ट्रीयवाद के क्षेत्र में वैचारिक दृष्टि से और व्यवहार की दृष्टि से नेहरू के दो महत्त्वपूर्ण योगदान हैं, जिनकी विवेचना के बिना नेहरू का अन्तर्राष्ट्रवाद अधूरा रहेगा। इनमें प्रथम है–असंलग्नता की विदेश नीति और द्वितीय है–पंचशील के सिद्धांत, दोनों एक दूसरे से जुड़े हुए हैं।

असंलग्नता–

आजादी के पश्चात भारत ने स्वतंत्र विदेश नीति की राह को चुना। इसके मुख्य कर्णधार पण्डित जवाहरलाल नेहरू थे। वे आश्वस्त थे कि वैश्विक जगत में अपनी महान सभ्यता के कारण भारत निडरता से अपनी बात रख सकता हैं। यदि भारत अंतर्राष्ट्रीय पटल पर अपनी आवाज बुलंद नहीं करता तो औपनिवेशिक

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

गुलामी से हाल में हासिल मुक्ति अर्थहीन हो जायेगी। अपनी विशालता और महान परम्परा के कारण भारत को प्रभावी रूप से अपने विचारों को प्रकट करना आवश्यक होगा। इसलिए स्वतंत्र विदेश नीति तत्कालीन समय की एक आवश्यकता थी और उसी का अवलम्बन किया गया।

नेहरू ने इसी भावना के आधार पर असंलग्नता को एक संगठन का स्वरूप दिया। आंदोलन का परिप्रेक्ष्य द्वितीय विश्व युद्ध के बाद दो विरोधी गुटों में विश्व का विभाजन था, एक अमेरीका तथा दूसरा सोवियत संघ के नेतृत्व में। नेहरू की समझ के अनुसार एशिया तथा अफ्रीका के नवस्वतंत्र और गरीब देशों को बड़ी शक्तियों के सैनिक गुटों से फायदे के बजाए नुकसान ही होगा। वे महाशक्तियों के खेल में शतरंज के मोहरे भर बनकर रह जाएंगे। नवस्वतंत्र देशों की आवश्यकता हैं, गरीबी, निरक्षरता और बीमारी से लड़ना, और यह काम सैनिक गुटों में शामिल होने से नहीं हो सकता। इसके विपरीत, भारत और उसके समान अन्य देशों को विकास के लिए शांति एवं शांत वातावरण की आवश्यकता हैं। उनका हित शांति में हैं, न कि युद्ध या तनाव में। इसलिए, भारत न बगदाद पैक्ट, मनीला संधि, सीटो और सेंटों में शामिल हुआ और न ही उनका समर्थन किया। इन संधियों के जरिए पश्चिम तथा पूर्व एशियाई देशों को पश्चिमी शक्ति गुटों के साथ जोड़ा गया।

भारत सिर्फ निरपेक्ष या सैनिक गुटों से दूर ही नहीं रहा अपितु नेहरू ने तीव्रता से जॉन फॉस्टर डलेस द्वारा भारत पर "अनैतिक निष्पक्षता" के दोष का खंडन भी किया। असंलग्नता का अर्थ था, हर मुद्दे पर स्वतंत्र रूख अपनाना, सही या गलत की स्वयं पहचान करना और सही को अपनाना। उन्होंने कहा :—

''जहाँ तक फासिज्म, उपनिवेशवाद और रंगभेद की बुरी ताकतों या न्यूक्लियर बम और हमलों और दमन के सवाल हैं, हम जोरदार तरीके से और बिना किसी दुविधा के उनके खिलाफ हैं......हम शीतयुद्ध और सैनिक गुटों से ही दूर रहते हैं। एशिया और अफ्रीका के नए राष्ट्रों को शीतयुद्ध की मशीन का पुर्जा बनने पर मजबूर करने का हम विरोध करते हैं। वैसे भी, हम हर उस चीज का विरोध करने के लिए आजाद हैं, जिसे हम दुनिया या अपने लिए गलत या हानिकारक समझते हैं, और जब कभी जरूरत पड़ती हैं, हम इस आजादी का इस्तेमाल करते हैं।''

असंलग्नता भारत तथा अन्य नव—स्वतंत्र राष्ट्रों की उपनिवेशवाद तथा साम्राज्यवाद से हासिल की गई आजादी बरकरार रखने के संघर्ष का प्रतीक रहा। आजाद होने वाले प्रारंभिक देशों में से एक होने के कारण भारत ने उचित ही पूर्व—उपनिवेशों को रास्ता दिखाया। सामूहिक रूप से इन देशों का बड़ा महत्त्व हैं। उदाहरण के लिए, संयुक्त राष्ट्र संघ में, जिसकी सदस्यता इन देशों के प्रवेश के कारण काफी बढ़ गई, एक देश—एक वोट की व्यवस्था ने गुटनिरपेक्ष समुदाय की, सोवियत संघ की मदद से पश्चिमी गुट का सामना करने में मदद की। इस प्रकार, असंलग्नता ने विश्व—संबंधों के जनवादीकरण में मदद की।

उपनिवेशवाद के खिलाफ संघर्ष में औपनिवेशिक एवं पूर्व—औपनिवेशिक देशों की सहायता भारत की विदेश नीति का मूल उद्देश्य हैं। इसमें गुट निरपेक्षता ने काफी मदद की। विदेश नीति को मजबूत बनाने के उद्देश्य को भी इससे सहायता मिली। नेहरू द्वारा युद्ध का जोरदार विरोध और हिरोशिमा की घटना के बाद परमाणु युद्ध खतरे के विरूद्ध संघर्ष के विचार सुविख्यात हैं। यह विश्वास अहिंसक संघर्ष तथा गांधीजी द्वारा प्रेरित हुए और उन्होंने आइंस्टीन तथा बर्टेड रसेल जैसे महान बुद्धिजीवियों का समर्थन प्राप्त किया। नेहरू ने शांति तथा परमाणु एवं आम निःशस्त्रीकरण को दुनिया के सामने पेश करना भारत का उद्देश्य बनाया।

नेहरू ने अपने विचार तथा व्यवहार और अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में भारत के आचरण से यह स्पष्ट कर दिया कि असंलग्नता न तो अवसरवादी नीति हैं और न ही निष्क्रियता की नीति। नेहरू की असंलग्नता के कुछ प्रमुख लक्षण इस प्रकार हैं :—

1. असंलग्नता की प्रेरणा और मूलाधार—*विश्व शान्ति*—नेहरू ने युद्ध के विनाशकारी परिणाामों को

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

देखा था और अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति के प्रसंग में उनका मूल लक्ष्य था, युद्ध और तनाव की सभी स्थितियों का विरोध। नेहरू ने अपनी दूरदर्शिता से इस बात को समझ लिया था कि अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति के दो शक्ति गुटों में से भारत यदि किसी शक्ति गुट के साथ जुड़ गया, तो इससे अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में तनाव की शक्तियों को बल मिलेगा और भारत स्वंय अपने लिए तनाव और युद्ध के वातावरण को आमंन्त्रित करेगा। नेहरू मानवतावादी और विश्व–शान्ति के उपासक थे। उन्होंने सत्य रूप में यह सोचा कि भारत अपनी असंलग्नता के बल पर दो परस्पर विरोधी शक्ति गुटों को एक–दूसरे के समीप लाने का कार्य कर सकेगा और स्वयं अपने लिए शान्ति और तनाव से मुक्ति प्राप्त करेगा। व्यवहार के स्तर भारत ने असंलग्नता के बल पर कोरिया, साइप्रस, कांगो आदि विवादों में शान्ति स्थापित करने वाले देश की भूमिका निभाई। नेहरू की असंलग्नता का यदि कोई मूल और सर्वोपरि प्रेरक तत्त्व था, तो वह था, शान्ति, अपने देश के लिए और समस्त विश्व के लिए।

2. असंलग्नता : एक सकारात्मक नीति– नेहरू काल में असंलग्नता के लिए तटस्थता शब्द के प्रयोग का अधिक प्रचलन था लेकिन नेहरू ने एक से अधिक अवसरों पर इस बात को स्पष्ट कर दिया कि असंलग्नता अन्तर्राष्ट्रीय कानून के अर्थ में तटस्थता की नीति या अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में नकारात्मकता की नीति नहीं हैं। सन 1949 ई0 की अमरीका यात्रा में अपने एक प्रसिद्ध वक्तव्य में उन्होंने कहा था, जब स्वतंत्रता के लिए संकट उपस्थित हो, न्याय को आघात पहुँचे और आक्रमण की घटना घटित हो तब हम न तो तटस्थ रह सकते हैं और न ही तटस्थ रहेंगे। नेहरू ने इस बात को स्पष्ट कर दिया कि असंलग्नता न तो अवसरवादी नीति है और न ही निषेधात्मक नीति। यह तो स्वतंत्रता, सत्य और न्याय का समर्थन करने और आक्रमणकारी का विरोध करने की सकारात्मक नीति हैं।

3. असंलग्नता : एक गतिशील नीति– असंलग्नता अपनी मूल धारणा में भी एक स्थिर नीति नहीं, वरन् राष्ट्रीय राजनीति और अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति की बदलती हुई परिस्थितियों के अनुसार एक गतिशील नीति हैं। असंलग्नता साधन और साध्य दोनों हैं। बदलती हुई परिस्थितियों में विश्व के व्यापक हितों को दृष्टि में रखते हुए भारत के स्वंय के राष्ट्रीय हितों की पूर्ति करना इसका प्रमुख उद्देश्य हैं।

4. शान्तिपूर्ण सह–अस्तित्व असंलग्नता का आवश्यक लक्षण– असंलग्नता शान्तिपूर्ण सह–अस्तित्व के विचार पर आधारित हैं। शान्तिपूर्ण सह–अस्तित्व का आशय यह हैं कि विश्व के विभिन्न देशों में विचारधारा और हित सम्बन्धी भेद होने पर भी उनके बीच तनाव, संघर्ष या युद्ध अनिवार्य नहीं हैं। वे अपने समस्त भेदों और मतभेदों के बावजूद एक–दूसरे के साथ शान्तिपूर्वक रह सकते हैं और उन्हे ऐसा ही करना चाहिए।

नेहरू असंलग्नता की विदेश नीति के मुख्य शिल्पकार थे और असंलग्नता अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति को पण्डित नेहरू का प्रमुख योगदान हैं। असंलग्नता का क्रान्तिकारी आदर्श एक आन्दोलन के रूप में परिणत होने लगा। यद्यपि असंलग्नता युद्धों को रोकने में पूर्णतया सफल नहीं हो सकी, किन्तु यह सत्य हैं कि इसने विश्व–शान्ति की महत्ता स्थापित की तथा एक सीमा तक विश्व–युद्ध को रोकने में सफल हुई। नेहरू की असंलग्नता ने तीसरी दुनिया के देशों में नैतिक शक्ति, चेतना तथा आत्मसम्मान विकसित करने में प्रमुख भूमिका अदा की।

पंचशील– नेहरू सोचते थे कि परस्पर विरोधी व्यवस्थाओं के बीच संघर्ष और युद्ध की स्थिति स्वाभाविक या अनिवार्य नहीं हैं। वे एक–दूसरे के साथ– शान्तिपूर्ण सह–अस्तित्व [Peaceful Co-existence] की स्थिति को अपना सकते हैं और समस्त मानव जाति को विनाश से बचाने के लिए इस प्रकार की स्थिति को अपनाना आवश्यक हैं।

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

नेहरू ने लगातार बल दिया कि विभिन्न विचारधाराओं और व्यवस्थाओं वाले देशों के बीच **शांतिपूर्ण सह–अस्तित्व** एक आवश्यकता हैं। उनका विश्वास था कि सच्चाई पर किसी का एकाधिकार नहीं था और बहुलवाद जीवन की सच्चाई थी। उन्होंने कहा कि मानव कल्याण तथा विश्वशांति के आदर्शों की स्थापना के लिए विभिन्न राजनीतिक, सामाजिक तथा आर्थिक व्यवस्था वाले देशों में पारस्परिक सहयोग आवश्यक हैं। इसके लिए जिन सिद्धांतों का अवलम्बन किया गया वे पाँच आधारभूत सिद्धांत, **पंचशील** कहलाते हैं। इसके जरिए विभिन्न देशों के बीच संबंधों का नियमन किया जा सकता था।

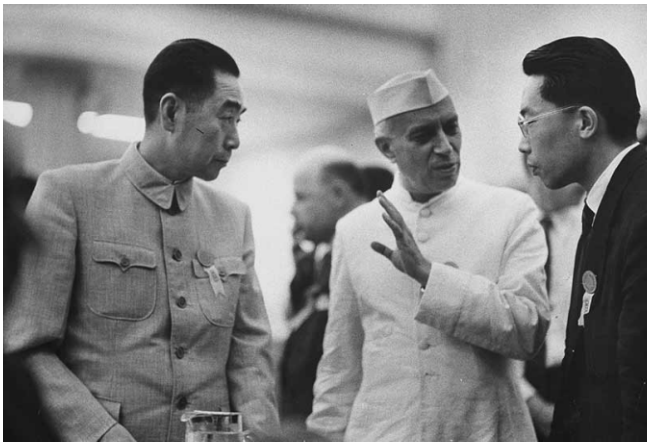

पंचशील के पाँच सिद्धांत निम्नानुसार हैं–

1. सभी देशों द्वारा अन्य देशों की क्षेत्रीय अखंडता और प्रभुसत्ता का सम्मान करना
2. दूसरे देश के आन्तरिक मामलों में हस्तक्षेप न करना
3. दूसरे देश पर आक्रमण न करना।
4. परस्पर सहयोग एवं लाभ को बढावा देना।
5. शांतिपूर्ण सह अस्तित्व की नीति का पालन करना।

सारांश में, स्वतंत्र भारत के प्रथम प्रधानमंत्री होने के नाते नेहरू के सामने अपार चुनौतियाँ थीं। इसके बावजूद किसी भी ऐतिहासिक मानदंड से उनकी उपलब्धियाँ विशालतम अनुपात में थी। सर्वोपरि, उन्होंने कुछ मूल्यों, दृष्टिकोणों, आदर्शों, लक्ष्यों और नजरिए को देश हित में पहचाना। उन्होंने इन्हे भारतीय जनता की सांस्कृतिक चेतना का अंग बना दिया।

नेहरू ने भारतीय राष्ट्र को सुदृढ़ किया, नागरिक अधिकार और संसदीय लोकतंत्र पर आधारित राजनीतिक व्यवस्था की नींव रखी– धर्मनिरपेक्षता, सामाजिक न्याय और सामाजिक उग्र सुधारवाद को राष्ट्रीय राजनीतिक प्रणाली का मूलाधार बनाया, असंलग्नता, स्वतंत्रता, अंतर्राष्ट्रीय मामलों में आत्मसम्मान, भारत के आंतरिक एवं बाहरी हितों को प्रोत्साहन, विश्व शांति और उपनिवेशवाद–विरोध को अपनी विदेश नीति का आधार बनाया; नियोजन आरंभ किया, शक्तिशाली सार्वजनिक क्षेत्र की आधारशिला रखी, भारत को आत्मनिर्भर स्वतंत्र अर्थव्यवस्था के रास्ते पर खड़ा किया तथा वैज्ञानिक मनोवृत्ति को आगे बढ़ाया। उन्होंने जनता को एक समाजवादी आदर्श प्रदान किया तथा समानता पर आधारित एक व्यापक समाजवादी समाज के लक्ष्य को लोकप्रिय बनाया। अस्पृश्यता का कानूनी अंत और हिंदू संहिता विधेयक स्वीकृत करवाकर उन्होंने दो ऐतिहासिक कदम उठाए। नेहरु ने अपने राजनीतिक व्यवहार में हमेशा सज्जनता, उदारता और सौम्यता से कार्य किया; सार्वजनिक जीवन में व्यवहार का जो उच्च मानदंड उन्होंने कायम किया, वह बाद के राजनीतिक नेताओं के लिए कसौटी साबित हुआ। लोकतंत्र को स्थापित करने में नेहरू की सफलता सन 1964 ई. में उनकी और सन 1966 ई. में लालबहादुर शास्त्री की मृत्यु के बाद सरकार और पार्टी के नेतृत्व में हुए गतिरोध विहीन सत्ता हस्तांतरण से साबित होती हैं।

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

अभ्यासार्थ प्रश्न

1. भारत का पहला परमाणु रिएक्टर कब स्थापित किया गया ?

   (अ) 1954 (ब) 1955

   (स) 1956 (द) 1957

2. बलवंत राय मेहता की सिफारिश पर किस व्यवस्था को स्थापित किया गया ?

   (अ) पंचायती राज (ब) नगरीय प्रशासन

   (स) आणविक अनुसंधान (द) अंतरिक्ष अनुसंधान

3. योजना आयोग की स्थापना किस सन में हुई ?

   (अ) 1949 (ब) 1950

   (स) 1951 (द) 1952

4. 'विदर इंडिया' (Whither India) पुस्तक किसके द्वारा लिखी गई हैं

   (अ) दादाभाई नौरोजी (ब) जवाहर लाल नेहरू

   (स) आर. सी. दत्त (द) गोपाल कृष्ण गोखले

5. पंचशील के सिद्धांत को समझाइये।

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

अध्याय–5

सुनियोजित विकास एवं सशक्त भारत के निर्माण की आधारशिला : नेहरू की भूमिका

आजादी के समय लगभग 30 करोड़ की आबादी वाले देश को उत्तराधिकार के रूप में एक बदहाल कृषि व्यवस्था एवं कुटीर उद्योग, भयंकर बेरोजगारी तथा गरीबी में जकड़ा हुआ एक वृहद समाज मिला। स्वतंत्रता के समय भारत विश्व के सर्वाधिक गरीब देशों में से एक था। उस समय देश औपनिवेशिक शोषण की पीड़ा, बंगाल के अकाल में हुई लगभग 30 लाख मौतों का दर्द एवं सन 1947 के विभाजन में आए करीब 15 लाख शरणार्थी जैसी समस्याओं से भी ग्रस्त था। मात्र 30.6 बिलियन डॉलर (1950 ई.) की राष्ट्रीय आय थी। वृहद भू–भाग, भौगोलिक विभिन्नताओं एवं ग्रामीण क्षेत्रों के अति पिछड़ेपन के होते हुए सीमित आर्थिक संसाधनों का समुचित उपयोग कर संतुलित सर्वांगीण विकास सुनिश्चित करना देश के नीति निर्धारकों के समक्ष एक बड़ी चुनौती थी।

सन 1927 ई0 की रूस यात्रा से नेहरू वहाँ के सुनियोजित विकास से बहुत प्रभावित हुए तथा उन्होंने भारत में भी आर्थिक नियोजन का सपना संजोया। उन्होंने भारत के तीव्र आर्थिक विकास हेतु आर्थिक नियोजन का मार्ग प्रस्तुत किया। सन 1934 ई. में सर एम. विश्वेश्वेरैया ने अपनी पुस्तक प्लान्ड इकॉनोमी इन इण्डिया में सुनियोजित विकास के माध्यम से 10 वर्षों में विकास का एक प्रारूप प्रस्तुत किया। उन्होंने कृषि में संलग्न श्रम को उद्योगों से सम्बद्ध कर राष्ट्रीय आय को दोगुना करने का प्रस्ताव प्रस्तुत किया। इसे भारत में आर्थिक नियोजन का पहला प्रयास कहा जाता है। इसके पश्चात भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के अधिवेशन में राष्ट्र के पुनरुत्थान हेतु सुनियोजित विकास पर हुई चर्चा के परिणामस्वरूप सन 1938 में पं नेहरू की अध्यक्षता में राष्ट्रीय नियोजन समिति (नेशनल प्लानिंग कमेटी) का गठन हुआ।

राष्ट्रीय नियोजन समिति की रिपोर्ट भारत में आर्थिक नियोजन का आधार सिद्ध हुई। राष्ट्रीय नियोजन समिति ने भारतीय अर्थव्यवस्था के प्रत्येक क्षेत्र में विशद जानकारी एकत्र करते हुए प्रत्येक क्षेत्र के विकास हेतु सुझाव प्रस्तुत किए। इस प्रकार नेहरू ने स्वाधीनता प्राप्ति के पूर्व प्राप्त अवसर का पूर्ण सदुपयोग करते हुए, भारत में आर्थिक नियोजन की मजबूत आधारशिला की रूपरेखा प्रस्तुत की।

नेहरू रुस के योजनाबद्ध विकास के मॉडल के साथ–साथ समाजवादी व्यवस्था से भी अत्यधिक प्रभावित थे, लेकिन वे न तो निरंकुश अनुशासन व शक्ति के प्रयोग पर आधारित व्यवस्था में विश्वास रखने वाले रूस के बोल्शेविक विचारों से सहमत थे और न ही इंग्लैण्ड की पूँजीवादी व्यवस्था से।

उन्होंने एक नियोजित लोकतांत्रिक समाजवादी विकास की कल्पना की और स्वतंत्रता के बाद भारत ने सुनियोजित विकास का एक औपचारिक मॉडल अपनाया। इस सम्बन्ध में नेहरू के आर्थिक नियोजन सम्बन्धी विचारों को जानना व समझना अत्यंत आवश्यक है। उनके आर्थिक नियोजन सम्बन्धी विचार इस प्रकार थे :–

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

आर्थिक नियोजन सम्बन्धी विचार एवं योजना आयोग का गठन–

सुनियोजित विकास नेहरू की वैचारिक सम्पदा का व्यवहारिकता में साकार होने का सर्वश्रेष्ठ उदाहरण है। आर्थिक नियोजन के क्षेत्र में नेहरू का सबसे बड़ा योगदान देश को एक सुनियोजित आर्थिक विकास का मॉडल प्रदान करना था। उन्होने एक नियोजित लोकतांत्रिक विकास की कल्पना की और स्वतंत्रता के बाद योजना बनाने का एक औपचारिक मॉडल अपनाया और उनकी अध्यक्षता में स्वतंत्र योजना आयोग का 15 मार्च, 1950 को गठन किया गया। देश के महत्त्वपूर्ण अर्थशास्त्रियों के साथ नेहरू ने विदेशों से जाने–माने अर्थशास्त्री बुलाए और देश को विकास के पथ पर अग्रसर करने हेतु प्रथम पंचवर्षीय योजना का ड्राफ्ट तैयार करवाया। नेहरू के प्रधानमंत्री के कार्यकाल में तीन पंचवर्षीय योजनाओं नें आयोग की स्थापना के उद्देश्यों यथा आमजन को आजीविका के पर्याप्त साधन उपलब्ध कराना, प्रत्येक वर्ग तक भौतिक संसाधनों का पहुँचना तथा सम्पदा एवं सम्पति के विकेन्द्रीकरण को साकार किया।

नेहरू की राज्य नियोजन में दृढ़ आस्था थी। उन्होंने यह भलीभांति समझ लिया था कि राष्ट्र की स्वतंत्रता किस प्रकार भारी उद्योगों व शक्ति संसाधनों पर आधारित है तथा स्वतंत्र भारत किस प्रकार विश्व की तकनीकी दौड़ में शामिल हो सकता है। यह नियोजित विकास न केवल भारत की आर्थिक स्वतंत्रता के लिए वरन भारतीय संस्कृति व आधुनिक विश्व के बीच जो अंतराल है उसे दूर करने के लिए भी आवश्यक है। नेहरू का यह सोचना था कि नियोजित औद्योगिक विकास के क्रियात्मक स्वरूप तथा समाजवादी नियत्रंण के अभाव में लक्ष्य की प्राप्ति असंभव है। इस शताब्दी में पिछली शताब्दी की तरह यह पर्याप्त नहीं है कि राज्य सहायता व प्रेरणा पर आधारित निजी क्षेत्र का विकास किया जाये। नेहरू ने उपर्युक्त दृष्टिकोण को राज्य नियंत्रण के रूप में लागू भी किया। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि राज्य के व्यापक नियंत्रण के पक्ष में जितने दृढ विचार नियोजन समिति के अध्यक्ष के रूप में नेहरू ने व्यक्त किए वे अब कुछ उदार हो चुके थे। उनका समाजवादी दृष्टिकोण भी उतना उग्र नहीं रह गया था तथा उन्होंने देश में मिश्रित अर्थव्यवस्था का स्वरूप प्रस्तुत किया।

जनवरी, 1955 में अवड़ी प्रस्ताव (Avadi Resolution) के अंतर्गत नेहरू ने नियोजन का ध्येय भारत में समाजवादी समाज की स्थापना बताया। इस समाजवादी समाज के अंतर्गत उत्पादन के प्रमुख साधन सामाजिक स्वामित्व या नियंत्रण में रहेंगे, उत्पादन में तेजी से वृद्धि की जाएगी, राष्ट्रीय संपत्ति के समान वितरण की व्यवस्था की जाएगी। योजना में जनता की आवश्यकताएँ मौद्रिक रूप में नहीं मापी जानी चाहिए, अपितु वास्तविक भौतिक आवश्यकताओं जैसे भोजन, वस्त्र, आवास, स्वास्थ्य, सुविधाएँ, रोजगार आदि पर बल दिया जाना चाहिए और इनकी प्राप्ति उत्पादन वृद्धि द्वारा ही हो सकती है।

जवाहर लाल नेहरू ने आर्थिक नियोजन को राष्ट्र के आर्थिक विकास की रीढ की हड्डी बताया। उनका मानना था कि योजना आवश्यक है अन्यथा हम उत्पादन के सीमित साधनों का सर्वोत्तम उपयोग नहीं कर पायेंगे। योजना का अर्थ केवल परियोजनाओं का एकत्रीकरण नहीं होता, अपितु परियोजनाओं का आधार तय करना तथा उन्हें इस प्रकार प्रगति के मार्ग पर अग्रसर करना है ताकि समाज का समग्र विकास संभव हो सके। हमारे देश में गरीबी की भयावह समस्या है। हमारे समक्ष सर्वदा एक कठिन विकल्प है–या तो हम कुछ चुने हुए क्षेत्रों में जो कि अनुकूल भी हैं, उत्पादन केन्द्रित करें और पिछड़े हुए क्षेत्रों को कुछ समय के लिए छोड़ दें, क्षेत्रीय आर्थिक असमानता को कम करने के लिए पिछड़े हुए क्षेत्रों का विकास भी साथ–साथ करें। इन विकल्पों के बीच एक संतुलन का मार्ग अपनाया गया तथा समेकित राष्ट्रीय योजना प्रस्तुत की गयी। एक राष्ट्रीय योजना में किसी भी प्रकार की कठोरताएँ नहीं होनी चाहिए। ये किसी भी हठधर्मिता पर आधारित नहीं होने चाहिए अपितु वर्तमान तथ्यों को ध्यान में रखकर होनी चाहिए। यह हो सकता है और आज के दिन जैसा मैं सोचता हूँ, बहुत से क्षेत्रों में निजी क्षेत्रों को प्रोत्साहन दिया जाना चाहिए। इन निजी उपक्रमों को राष्ट्रीय

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

योजना में सम्मिलित करते हुए इन पर आवश्यक नियंत्रण भी लगाए जाने चाहिए।

नेहरू ने एक सामान्य आदमी को सामाजिक न्याय प्रदान करने की दृष्टि से नियोजन को बहुत अधिक महत्त्व दिया। उन्होंने अपनी पुस्तक ड़िस्कवरी ऑफ इण्डिया (Discovery of India) में कहा है कि "सामाजिक संरचना को समाज में संग्रह करने की प्रवृति को सीमित करना होगा तथा विकास में बाधाओं को दूर करना होगा। सामान्य आदमी के लाभ के लिए यह नियोजन पर आधारित होगा। यह लाभ जीवन स्तर में सुधार प्रगति के अवसरों में वृद्धि तथा मानव में अन्तर्निहित गुणों के विकास के रूप में प्राप्त हो सकते है। लेकिन ये सभी प्रयास लोकतांत्रिक परिप्रेक्ष्य में होने चाहिए।

नेहरू आर्थिक नियोजन के माध्यम से भारत को एक औद्योगिक राष्ट्र के रूप में परिणित करना चाहते थे। नियोजन के पीछे मूल विचार ही औद्योगीकरण रहा जिसके बिना गरीबी बेरोजगारी राष्ट्रीय सुरक्षा तथा आर्थिक पुनर्निर्माण संभव नहीं था। इस प्रकार एक राष्ट्रीय औद्योगीकरण योजना के अंतर्गत बडे पैमाने के आधारभूत उद्योग छोटे पैमाने के उद्योग व कुटीर उद्योग सम्मिलित होते है। ऐसा करते समय योजना के अंतर्गत कृषि को नहीं भुलाया जा सकता। नियोजन का क्षेत्र विस्तृत होता चला जाता है जब इसके अतर्गत सामाजिक सेवाओं को भी शामिल कर लिया जाता है।

नेहरू ने योजना निर्माण करते समय योजना आयोग को स्वच्छन्द नहीं छोडा। उनके अनुसार योजना आयोग को संविधान की सीमाओं के अंतर्गत ही योजना बनानी चाहिए। यद्यपि नेहरू स्वयं योजना आयोग के अध्यक्ष थे परन्तु लोकसभा में 15 दिसम्बर, 1952 को दिए गए वक्तव्य से नेहरू के विचार स्पष्ट हैं। उनके अनुसार हम लोग एक लोकतांत्रिक ढाँचे में काम कर रहें जिसे हमने खुद चुना है और जो हमारे संविधान में और संसद में निहित है। यह स्वाभाविक है कि हमारी योजना देश की व्यवस्था के अनुकुल होना चाहिए। लेकिन योजना आयोग को यह हक नहीं है कि वह कोई ऐसा कार्यक्रम बनाये जिसका हमारे संविधान या व्यवस्था से जिसके अधीन हम काम कर रहे है कोई वास्ता ही नहीं हो।

नेहरू ने भारत में नियोजन की बात जनतांत्रिक व्यवस्था के अंतर्गत प्रस्तुत की अतः नेहरू द्वारा पल्लवित यह आर्थिक नियोजन "जनतांत्रिक नियोजन" कहलाता है। हमारे देश में योजना आयोग कोई सर्व शक्ति संपन्न संस्था नहीं थी। यद्यपि योजना आयोग के पदेन अध्यक्ष प्रधानमंत्री होते थे तथापि योजना आयोग योजना का निर्माण करता है किन्तु अंत में योजना के क्रियान्वयन हेतु इसे संसद के पटल पर रखा जाता था। योजना का क्रियान्वयन केन्द्र व राज्य सरकारों द्वारा किया जाता था। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि योजना आयोग का गठन मंत्रीमण्डलीय प्रस्ताव द्वारा हुआ तथा यह एक परामर्शदाता निकाय था।

नेहरू ने योजना की अवधि को लेकर यह मत व्यक्त किया कि योजना दीर्घकालिक व अल्पकालिक दोनों ही प्रकार की होनी चाहिए। दीर्घकालिक लक्ष्य अल्पकालिक योजनाओं से प्राप्त किए जाएँ। पंचवर्षीय योजनाओं को मध्यवर्ती कड़ी के रूप में प्रभावी भूमिका निभानी चाहिए। नेहरू के शब्दों में "यह सबसें जरूरी है कि हम 15 वर्ष की अवधि में क्या हासिल करना चाहते हैं, इसका हमें सही और साफ विचार हो। फिर हम इस बड़ी और सामान्य योजना में समायोजित हो सकने वाली छोटी छोटी योजनाओं पर आ सकते हैं। और फिर सबसे छोटी, यानि एक साल की या वार्षिक योजना भी बड़ी योजना में समायोजित होनी चाहिए।

पंचवर्षीय योजना का एक बड़ा ढाँचा होना चाहिए जिसमें उपर्युक्त परिवर्तन हो सके जो सिर्फ हमारे साधनों की दृष्टि से न हो बल्कि उस दीर्घावधि तस्वीर को ध्यान में रखते हुए भी हो जो वक्त के साथ–साथ हम विकसित करते हुए जाएंगे। जब हम अपने सामने 15 वर्ष का लक्ष्य रखेंगे तो छोटी–छोटी योजनाओं को स्वीकार करना हमारे लिए आसान हो जाएगा।"

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

नेहरू का मत था कि ''अपने निर्धारित लक्ष्यों को पाने के लिए नियोजन एक सतत् प्रक्रिया है ....दीर्घ अवधि योजना का तात्पर्य पाँच वर्षीय योजना ना होकर 15 से 20 वर्षीय योजना होनी चाहिए जिसमें सामाजिक संरचना को दृष्टिगत रखा जाए। सामान्य व्यवस्थाओं का समेकित अध्ययन किया जाना चाहिए तथा विविध क्षेत्रों को सम्मिलित करते हुए प्रगति का मार्ग तलाशना चाहिए। यही देश को भलाई के मार्ग पर ले जाने का उचित प्रयास होगा।''

नेहरू के समाजवादी कार्यक्रम को भारत के तत्कालीन अग्रणी उद्योगपतियों ने सन 1944 ई0 में समर्थन प्रदान किया। इन उद्योगपतियों में जहाँगीर, रतनजी टाटा, घनश्यामदास बिड़ला, पुरुषोत्तम ठाकुरदास आदि शामिल थे। इनके द्वारा जो ऐतिहासिक दस्तावेज तैयार किया गया उसे "भारत के आर्थिक विकास की योजना" अथवा "बॉम्बे प्लान" के नाम से जाना जाता है।

सन 1946 ई0 में के.सी. नियोगी की अध्यक्षता में गठित नियोजन परामर्शदात्री मण्डल (Planning Advisory Board) की सिफारिश के आधार पर केन्द्रीय मंत्रिमण्डल के प्रस्ताव द्वारा 15 मार्च, 1950 को पहली बार जवाहर लाल नेहरू की अध्यक्षता में योजना आयोग का गठन किया गया। यह एक परामर्शदात्री निकाय था। योजना आयोग देश में सामाजिक और आर्थिक विकास के नियोजन की सर्वोच्च संस्था थी।

योजना आयोग का गठन संविधान के तीन सिद्धान्तों को पूरा करने के लिए किया गया–

1. भारत के सभी नागरिकों, स्त्री और पुरूष का जीवन निर्वाह के समस्त साधनों पर समान अधिकार है।
2. सभी भौतिक साधनों का उपयोग व वितरण इस प्रकार हो कि वह आम लोगों की प्रगति का माध्यम बनें।
3. आर्थिक विकास कैसे भी पूँजी के केन्द्रीकरण का कारण न बन कर आम जनता तक पहुंचने का माध्यम बने।

योजना आयोग को मुख्य रूप से निम्न कार्य सौपें गये :–

1. देश के भौतिक, पूँजी एवं मानव संसाधनों का आकलन कर उनमें वृद्धि की संभावनाएँ तलाश करना।
2. देश के संसाधनों के प्रभावी एवं समुचित उपयोग हेतु योजना बनाना।
3. योजनाओं के क्रियान्वयन की प्राथमिकताओं और उनके चरणों का निर्धारण करना।
4. आर्थिक विकास में बाधक तत्त्वों की पहचान करना।
5. प्रत्येक चरण के सफल क्रियान्वयन के लिए अपेक्षित तंत्र की प्रकृति का निर्धारण करना।
6. योजनाओं के क्रियान्वयन की समय–समय पर समीक्षा करना तथा आवश्यक समायोजनों की अनुशंसा करना।
7. आयोग के कर्तव्यों के निर्वहन को सुगम बनाने या केन्द्र अथवा राज्य सरकारों द्वारा किसी विषय पर मांगी गयी सलाह से सम्बन्धित अनुशंषा करना।

कार्य विभाजन प्रणाली के माध्यम से योजना आयोग को परिप्रेक्ष्य नियोजन, राष्ट्रीय विकास में जन सहयोग, पहाड़ी क्षेत्र विकास कार्यक्रम, राष्ट्रीय सूचना विज्ञान केन्द्र तथा इंस्टीट्यूट ऑव एप्लाइड मैन पावर रिसर्च आदि विषय भी सौंपे गए। प्रथम योजना आयोग के मुख्य सदस्यों में प्रधानमंत्री जवाहर लाल नेहरू के अतिरिक्त वरिष्ठ नौकरशाह वी0 टी0 कृष्णमाचारी, तत्कालीन वित्त मंत्री, सी0 टी0 देशमुख, जे0 सी0 घोष और के0 सी0 नियोगी थे। नेहरू के अतिरिक्त सभी सदस्यों को विशेष क्षेत्र की जिम्मेदारियाँ दी गई थी। जैसे, प्रथम योजना में कृष्णमाचारी के पास कृषि, सिंचाई एवं उर्जा, घोष के पास शिक्षा, सामाजिक कल्याण एवं

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

सामुदायिक विकास तथा नियोगी के पास उद्योग, वाणिज्य एवं परिवहन और देशमुख के पास वित्तीय प्रबंधन की जिम्मेदारी थी। सन 1950 ई0 के बाद प्रत्येक योजना भारत के विकास का एक प्रमुख घटक रही है। प्रत्येक योजना के लागू होने से पूर्व पूर्ववर्ती योजना का मूल्यांकन किया गया तथा भविष्य के लिए कार्ययोजना तैयार की गई। प्रत्येक योजना के कुछ मुख्य लक्ष्य निर्धारित किए गये जिससे भारत में सुनियोजित विकास की अवधारणा की पुष्टि हो सकी।

योजना आयोग की स्थापना मूलतः एक स्टॉफ एजेन्सी के रूप में केन्द्र सरकार को परामर्श देने की दृष्टि से की गई थी लेकिन बाद में आयोग एक शक्तिशाली और दिशा–निर्देशक प्राधिकरण के रूप में उभरा।

नवसृजित स्वतंत्र देश के लिए नियोजित विकास अत्यावश्यक था। ब्रिटिश शासन के दुष्प्रभावों ने भारत में एक छिन्न–भिन्न अर्थव्यवस्था, आर्थिक असमानता से जकड़े हुए विभिन्न वर्ग, सीमित क्षेत्र में किया गया औद्योगीकरण और संसाधनों एवं संपदा का असमान वितरण छोड़ा था। यह भी उल्लेखनीय है कि आजादी से पूर्व ब्रिटिश शासन के दौरान आर्थिक नीतियों एवं संसाधनों पर सत्ता का पूर्ण नियत्रंण था जिसका नकारात्मक प्रभाव आम जन को पूर्णतया प्रभावित कर रहा था। अतः आजादी के पश्चात संसाधनों एवं समृद्धि के समान वितरण के लिए आवश्यक था कि पूँजी का पूर्ण नियत्रंण सत्ता एवं निजी हाथों में न होकर सार्वजनिक क्षेत्र के लिए भी हो। इसीलिए स्वतंत्रता के पश्चात भारत ने पूर्ण समाजवादी या पूर्ण पूँजीवादी अर्थव्यवस्था अपनाने की अपेक्षा मध्यमार्गी नीति अपनाकर मिश्रित अर्थ व्यवस्था का रास्ता अपनाया। इस सुनियोजित विकास की योजना में सार्वजनिक उपक्रमों की स्थापना का भी विशेष योगदान रहा।

भारतीय संविधान के अनुच्छेद 39 में यह उल्लेखित किया गया है कि ''राज्य का यह कर्त्तव्य है कि वह अपनी नीति को इस प्रकार निर्देशित करे कि देश के भौतिक साधनों के स्वामित्व, नियंत्रण एवं वितरण में सामान्य हितों का संवर्द्धन हो और आर्थिक प्रणाली के संचालन के फलस्वरूप जनहित के विरुद्ध सम्पत्ति एवं उत्पादन के साधनों का केन्द्रीकरण नहीं हो।''

सभी विकसित, विकासशील एवं अल्पविकसित देशों ने योजना निर्माण में सार्वजनिक क्षेत्र के महत्त्व को स्वीकार किया। संयुक्त राज्य अमेरिका जो पूँजीवाद अर्थात निजी क्षेत्र का प्रमुख समर्थक देश है, वहां भी 1930 की विश्वव्यापी मंदी के परिणामस्वरूप टेनेसी वेली परियोजना (Tennessee Valley Authority) जैसे उपक्रम सार्वजनिक क्षेत्र में स्थापित किए गये।

भारत को सुनियोजित विकास से प्रगति पथ पर अग्रसर करने के लिए योजना आयोग निस्सन्देह एक महत्त्वपूर्ण उपकरण रहा जिसे निम्नलिखित प्रारम्भिक तीन पंचवर्षीय योजनाओ के उद्देश्य व उनकी उपलब्धियों से सहज ही समझा जा सकता है। ये तीनों पंचवर्षीय योजनाएं पं. नेहरु के नेतृत्व में क्रियान्वित की गई।

प्रथम पंचवर्षीय योजना (1951—1956)—

प्रथम पंचवर्षीय योजना का मुख्य उद्देश्य अर्थव्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रों के मध्य संतुलन स्थापित कर देश को विकास यात्रा के पथ पर अग्रसर करना था। इसे मिश्रित अर्थव्यवस्था के माध्यम से कार्यान्वित करने का लक्ष्य निर्धारित किया गया। जहाँ सार्वजनिक क्षेत्र के साथ–साथ निजी क्षेत्र भी अपनी भूमिका निभा सके। प्रथम पंचवर्षीय योजना में कृषि, सिंचाई व विद्युत कार्यक्रमों को सर्वोच्च प्राथमिकता दी गई। लौह, स्टील, कैमिकल तथा इलेक्ट्रिक उपकरणों से सम्बन्धित उद्योगों एवं उपक्रमों की स्थापना की गई। सामाजिक सेवाओं जैसे शिक्षा, तकनीकी प्रशिक्षण एवं स्वास्थ्य पर विशेष ध्यान दिया गया तथा सामुदायिक सेवाओं के लिए स्थानीय प्रयासों पर बल दिया गया।

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

प्रथम योजना का प्रारूप योजना आयोग द्वारा जुलाई, 1951 में प्रस्तुत किया गया। इसके दो भाग थे, एक भाग में 1493 करोड़ रूपये का प्रावधान था। इनमें शामिल परियोजनाओं को आवश्यक रूप से पूरा करना था तथा दूसरे भाग में 300 करोड़ रुपये का प्रावधान किया गया जिसे बाहरी सहायता मिलने पर पूर्ण किया जाना था। प्रथम योजना के प्रारूप को अन्तिम रूप प्रदान करते समय दोनों भागों को एक कर दिया गया तथा सम्मिलित रूप से 2069 करोड़ रुपये की योजना तैयार की गई। बाद में इस राशि को बढाकर 2377 करोड़ रुपये किया गया। इस योजना में सिंचाई एंव ऊर्जा के लिए 647 करोड़ रुपये, परिवहन एवं संचार के लिए 570 करोड़ रुपये, सामाजिक सेवाओं के लिए 532 करोड़ रुपये, कृषि एवं सामुदायिक सेवाओं के लिए 354 करोड़ रुपये तथा उद्योग एवं खनन के लिए 188 करोड़ रुपये का प्रावधान किया गया।

योजना में राष्ट्रीय आय में 13 प्रतिशत की वृद्धि का लक्ष्य रखा गया जबकि पाँच वर्षो में 18 प्रतिशत की वृद्धि हुई । प्रति व्यक्ति आय 11 प्रतिशत व उपभोग स्तर में 8 से 9 प्रतिशत की वृद्धि हुई। कृषिगत उत्पादन में 18 प्रतिशत की वृद्धि हुई तथा औद्योगिक उत्पादन में 39 प्रतिशत की वृद्धि हुई। इस योजना में विज्ञान, तकनीक, शोध, भारी उद्योग, ग्रामीण उद्योगों, हैण्डीक्राफ्ट एवं बांधो के निर्माण पर विशेष ध्यान दिया गया। सामाजिक सेवाओं में, विशेषकर स्वास्थ्य के क्षेत्र में मलेरिया निवारण के लिए 10 करोड़ रुपये का प्रावधान किया गया। अनुसूचित जाति, जनजाति, जरायम पेशा जातियों के लिए औद्योगिक आवासों के निर्माण के लिए 49 करोड़ का प्रावधान किया गया। इस योजना के दौरान विभिन्न सिंचाई परियोजनाएँ प्रारम्भ की गई जैसे भांखडा नांगल, हीराकुण्ड तथा दामोदर घाटी परियोजना आदि। इन नदी घाटी योजनाओं को नेहरु ने आधुनिक भारत के मंदिर कहा है। प्रथम योजना के अन्तिम वर्ष 1956 में पाँच आई.आई.टी प्रारम्भ किए गये। इस योजना के अन्तर्गत ही देश के उच्च शिक्षा ढाँचे को मजबूत बनाने के लिए सन 1956 ई0 में विश्वविद्यालय अनुदान आयोग की स्थापना की गई।

प्रथम पंचवर्षीय योजना में इस बात पर भी बल दिया गया कि सरकार को सामाजिक–आर्थिक दायित्वों को पूरा करने के लिए उन आवश्यक उद्योगों को स्थापित करना होगा जिनमें निजी क्षेत्र अपनी भूमिका नहीं निभाना चाहता। इस योजनाकाल में हिन्दुस्तान शिपयार्ड लिमिटेड, इन्टीग्रल कोच फैक्ट्री, खादी एवं विलेज इंडस्ट्रीज बोर्ड, हिन्दुस्तान मशीन टूल्स लिमिटेड, एयर इंडिया इन्टरनेशनल, इंडियन एयरलाइन्स कॉरपोरेशन, भारत इलेक्ट्रोनिक्स लिमिटेड, स्टेट बैंक ऑफ इंडिया तथा अशोका होटल्स लिमिटेड आदि उद्योग सार्वजनिक क्षेत्र में स्थापित किए गये। प्रथम योजना एवं आने वाली अन्य योजनाओं में सार्वजनिक उपक्रमों की स्थापना से देश के त्वरित आर्थिक विकास एवं औद्योगीकरण में सहायक तथा आर्थिक विकास हेतु आधारभूत संरचना का निर्माण करना,संतुलित क्षेत्रीय विकास को सुनिश्चित करना, रोजगार के अवसरों का तीव्र गति से सृजन, आय एवं सम्पत्ति का पुनर्वितरण, लघु एवं सहायक उद्योगों की स्थापना, आर्थिक शोषण पर रोक, समाजवादी समाज के लक्ष्य की प्राप्ति, सम्पत्ति एवं उत्पादन के साधनों के संकेन्द्रण पर अंकुश, निर्यात को प्रोत्साहन तथा अर्थव्यवस्था के लिए बचत एवं विदेशी पूँजी जुटाना, निजी क्षेत्र के लिए आदर्श एवं प्रतिस्पर्धा का प्रतिमान प्रस्तुत करना, तथा प्राकृतिक संसाधनों का वैज्ञानिक विदोहन सुनिश्चित करना संभव हो सका।

इस योजना के अन्तर्गत सुनियोजित विकास एवं आधारभूत संरचना के निर्माण हेतु विभिन्न शोध संस्थानों व उपक्रमों को स्थापित किया गया जो तत्कालीन नीति नियंताओं के वृहद दृष्टिकोण को परिलक्षित करती है। इन संस्थानों व उपक्रमों के चित्र, उनकी स्थापना की तिथियों के साथ संलग्न हैं।

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

सेन्ट्रल ड्रग रिसर्च इन्स्टीट्यूट, लखनऊ

17 फरवरी, 1951 को तत्कालीन प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरू ने उद्घाटन किया।

सेन्ट्रल इलेक्ट्रोकेमिकल रिसर्च इन्स्टीट्यूट, कराईकुड़ी

तमिलनाडु इलेक्ट्रो केमिस्ट्री के क्षेत्र में अनुसंधान के लिए CSIR की राष्ट्रीय प्रयोगशाला के रूप में जनवरी, 1953 को स्थापित किया गया। इस संस्था की स्थापना में अलगप्पा चेटियार, पं जवाहर लाल नेहरू एवं डॉ शांति स्वरूप भटनागर की प्रमुख भूमिका रही।

केन्द्रीय खाद्य प्रौधोगिकी अनुसंधान संस्थान मैसूर

CSIR की सम्बद्ध प्रयोगशाला के रूप में प्रौद्योगिकी विकास, खाद्य सुरक्षा और इंजीनियरिंग के क्षेत्र में शोध के लिए सन 1950 ई. में स्थापित किया गया।

केन्द्रीय ग्लास एवं सेरेमिक अनुसंधान संस्थान, कोलकाता

खनिज स्रोतों के अध्ययन के लिए सीमित रूप में 1944 ई. में स्थापित हुआ लेकिन 26 जनवरी, 1950 को विधिवत रूप से इसका उद्घाटन हुआ।

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

केन्द्रीय चमड़ा अनुसंधान संस्थान, चेन्नई

चमड़े के क्षेत्र में अनुसंधान के लिए 24 अप्रैल, 1948 में स्थापित किया गया।

नेशनल केमिकल लेबोरेट्री, दिल्ली

रसायन एवं रसायन अभियांत्रिकी के क्षेत्र में अनुसंधान के लिए 1950 ई. में स्थापित की गयी।

नेशनल मेटलर्जीकल लेबोरेर्ट्री, जमशेदपुर

धातु प्रौद्योगिकी क्षेत्र में अनुसंधान के लिए स्थापित की गई। सर्वप्रथम 21 नवम्बर, 1946 को स्वतंत्र भारत के पहले गर्वनर जनरल चक्रवर्ती राजगोपालाचारी द्वारा फाउंण्डेशन स्टोन रखा गया तथा 26 नवम्बर, 1950 को तत्कालीन प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरू द्वारा इसका विधिवत् उद्घाटन किया गया।

नेशनल फिजिकल लेबोरेट्री, दिल्ली

माप–तौल इकाईयों के क्षेत्र में शोध के लिए नेहरू द्वारा 04 अक्टूबर, 1947 को इसकी अधारशिला रखी गयी तथा 21 जनवरी, 1950 को सरदार बल्लभ भाई पटेल ने इसका उद्घाटन किया।

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

गाँधी सागर बांध

यह बांध मध्यप्रदेश के नीमच एवं मन्दसौर जिले में स्थित है। तत्कालीन प्रधानमंत्री पं. जवाहर लाल नेहरू ने 7 मार्च, 1954 को इसकी आधारशिला रखी।

तुंगभद्रा बांध—यह बांध कर्नाटक के होस्पेट तथा बेल्लारी जिले में स्थित है । इसके मुख्य आर्किटेक्ट चेन्नई के थिरूमल अय्यर थे। यह 1953 ई. में बनकर तैयार हुआ।

भाखड़ा नांगल बांध

1944 ई. में पंजाब के राजस्व मंत्री सर छोटूराम ने विलासपुर हिमाचल प्रदेश के राजा के साथ इसके निर्माण के लिए समझौता किया। 1948 ई. में इसका निर्माण प्रारम्भ हुआ। 17 नवम्बर, 1955 को नेहरू ने प्रतीकात्मक रूप से इस बांध में कंक्रीट डालकर इसकी शुरूआत की। जवाहरलाल नेहरू ने इसे चमत्कारिक वस्तु कहा।

नेशनल फर्टिलाइजर लिमिटेड, नांगल

खाद्य क्षेत्र में अनुसंधान के लिए 1961 ई. में स्थापित किया गया।

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

भारत इलेक्ट्रोनिक्स लिमिटेड की स्थापना सन 1954 में बैंगलोर में की गयी।

हिन्दुस्तान शिपयार्ड लिमिटेड भारत का एक पोत प्रांगण है, जो विशाखापट्टनम में स्थित है।

प्रथम पंचवर्षीय योजना मार्च, 1956 में समाप्त हुई। इस योजना ने भारत में समाजवादी व्यवस्था को स्थापित करने का आधार रखा। इस योजना ने स्वतंत्रता तथा लोकतंत्र के मूल्यों से परिपूर्ण सामाजिक व आर्थिक व्यवस्था की नींव रखी जो जाति, वर्गभेद तथा क्षेत्रवाद से ऊपर थी। इन संस्थानों की स्थापना ने रोजगार का सृजन किया तथा उत्पादन में वृद्धि की, जो एक विकासशील देश के लिए एक आधारभूत आवश्यकता थी।

द्वितीय पंचवर्षीय योजना (1956–61)–

अप्रैल, 1954 में योजना के प्रारम्भ होने के पूर्व आयोग ने राज्य सरकारों को जिले व ग्राम स्तर की योजनाएँ विशेष तौर पर तैयार करने का आग्रह किया जिसमें विशेष रूप से कृषि उत्पादन एवं ग्रामीण उद्योगों की महत्ता को सम्मिलित किया जाना था। स्थानीय स्तर पर इन योजनाओं को तैयार करवाने का कारण प्रत्येक क्षेत्र विशेष की आवश्यकताएँ, भौगोलिक संरचना तथा विकास का स्तर भिन्न होना था। अतः इस प्रकार से योजना में आम–जन को सम्मिलित करने का सफल प्रयास किया गया। इस योजना के निर्माण में विख्यात सांख्यिकीविद महालनोबिस का योगदान रहा। उन्हीं के दिये गये मॉडल पर इस योजना का निर्माण किया गया। उनका मत था कि देश में आधारभूत उद्योगों की स्थापना की जाए ताकि कृषि तथा अन्य संबद्ध उद्योगो के लिए अवसर उपलब्ध हो सकें। इस योजना के उद्देश्य इस प्रकार थे–

1. प्रथम योजना में स्थापित संस्थानों का विकास करना तथा इन संस्थानों में होने वाले शोध को भारत के विकास के उपयोग में लिया जाना।
2. औद्योगिक तथा तकनीकी विकास को प्राथमिकता देना।
3. राष्ट्रीय आय में वृद्धि जिससे जीवन स्तर को सुधारा जा सके।
4. रोजगार के अवसरों में वृद्धि।
5. आय एवं सम्पदा के वितरण में असमानता के अन्तर को कम करना।

द्वितीय योजना का प्रारूप फरवरी, 1956 में आया तथा संसद ने इसे मई, 1956 में पारित किया। इस योजना में सार्वजनिक क्षेत्र के लिए 4800 करोड़ एवं निजी क्षेत्र के लिए 2400 करोड़ रुपये का प्रावधान रखा गया। इस योजना में परिवहन, संचार, उद्योग एवं खनन पर कुल योजना के 50 प्रतिशत का प्रावधान रखा

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

गया। द्वितीय योजना में स्वेज नहर संकट व कुछ अन्य समस्याओ के कारण सार्वजनिक क्षेत्र की परियोजनाओं की अनुमानित लागत में वृद्वि होने लगी। 4800 करोड़ सार्वजनिक क्षेत्र के प्रावधान की सीमा को बढ़ाए जाने पर विचार हुआ। इस हेतु मई, 1958 में राष्ट्रीय विकास परिषद ने संसद को अपना प्रतिवेदन प्रस्तुत किया तथा 3 विकल्प सुझाए–

1. योजना का प्रावधान 4260 करोड़ रुपये किया जाए।
2. योजना का वास्तविक प्रावधान 4800 करोड़ रुपये ही रखा जाए तथा सिचांई, ऊर्जा, सामाजिक सेवा के बजट में कटौती की जाए।
3. योजना का प्रावधान 4500 करोड़ रुपये कर कुछ मुख्य परियोजनाओं को पूरा किया जाए।

राष्ट्रीय विकास परिषद ने तीसरे बिन्दु पर सहमति व्यक्त कर योजना को दो भागों में विभाजित किया। पहले भाग में 4500 करोड़ रुपये का प्रावधान रखा गया जिसमें मुख्य प्रोजेक्ट शामिल थे तथा दूसरे भाग में 300 करोड़ रुपये का प्रावधान रखा गया जिसे पर्याप्त वित्तीय संसाधन प्राप्त होने पर पूरा किया जाना था।

पूर्व व संशोधित प्रावधानों के अनुसार क्षेत्रवार अनुमानों की तालिका निम्नानुसार थी :–

(राशि करोड़ों में)

क्षेत्र	प्रावधान 4800 करोड़	प्रतिशत	प्रावधान 4500 करोड़	प्रतिशत
परिवहन एवं संचार	1345	28.0	1340	29.8
उद्योग एवं खनिज	880	18.4	790	17.5
सामाजिक सेवाएं	863	18.0	810	18.0
कृषि एवं सामुदायिक सेवाएं	568	11.8	510	11.3
सिंचाई एवं ऊर्जा	860	17.9	820	18.2
ग्रामीण एवं लघु उद्योग	200	4.2	160	3.6
विविध	84	1.7	70	1.6
योग	4800	100	4500	100

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

इस योजना में अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष से 95 करोड़ रुपये की सहायता ली गई। विदेशी सहायता में अमेरिका, रूस, पश्चिमी जर्मनी तथा जापान से सहायता प्राप्त की तथा वर्ल्ड बैंक ने रेल्वे एवं बंदरगाहों के विकास के लिए सहायता प्रदान की।

दूसरी योजना में राष्ट्रीय आय में 10 प्रतिशत वृद्धि हुई। कृषि उत्पादों में 19 प्रतिशत की वृद्धि हुई तो प्रतिव्यक्ति आय 11 प्रतिशत बढ़ी। विनियोग की दर जो प्रारम्भ में राष्ट्रीय आय का 7.3 प्रतिशत थी जो बढ़कर 11 प्रतिशत हो गई। सिंचित क्षेत्र 2.26 करोड़ हैक्टेयर से 2.8 करोड़ हैक्टेयर हो गया तथा विद्युत का उत्पादन 34 लाख किलोवाट से बढ़कर 56 लाख किलो वाट हुआ।

इस योजना काल में समाजवादी समाज की स्थापना के उद्देश्य को ध्यान में रखते हुए सन 1956 में नई औद्योगिक नीति की घोषणा की। इसमें आर्थिक विकास को बढ़ावा देने के लिए तीव्र औद्योगीकरण का लक्ष्य निर्धारित किया। इस काल में सार्वजनिक क्षेत्र में ओ.एन.जी.सी., हैवी इलेक्ट्रिकल्स लिमिटेड, नेशनल कोल डवलपमेंट कारपोरेशन लिमिटेड, इंडियन रिफाईनरीज लिमिटेड, इंडियन ऑयल लिमिटेड, हिन्दुस्तान टेलीप्रिन्ट्स लिमिटेड आदि लोक उपक्रमों की स्थापना की गई। इसी योजनाकाल में भिलाई, दुर्गापुर एवं राऊरकेला इस्पात संयत्रों की स्थापना की गयी।

इस योजना में जहाँ एक तरफ विज्ञान, तकनीक, उद्योग एवं कृषि को प्राथमिकता दी गई, वहीं दूसरी ओर शिक्षा मंत्रालय ने सांस्कृतिक एकता एवं विकास से संबंधित विभिन्न कार्यक्रमो की रूपरेखा बनाई जो निम्न प्रकार थी –

1. हिन्दी और अन्य क्षेत्रीय भाषाओं का विकास।
2. नेशनल बुक ट्रस्ट की स्थापना।
3. बनारस एवं कुरूक्षेत्र में संस्कृत विश्वविद्यालय की स्थापना।
4. कला एवं संस्कृति के विकास के लिए संगीत, नृत्य, नाटक अकादमी की स्थापना।
5. पुरातत्त्व विभाग, राष्ट्रीय अभिलेखागार तथा नृविज्ञान विभाग का विकास।

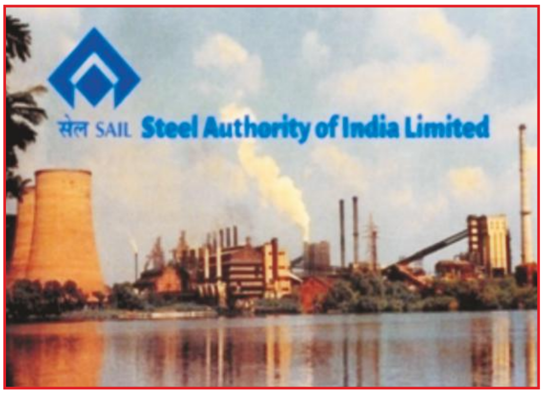

भिलाई इस्पात कारखाने की स्थापना सन 1955 में सोवियत रूस के सहयोग से की गई।

तेल और गैस उत्पादन के लिए **ओ.एन.जी.सी.** की स्थापना 14 अगस्त, 1956 में की गई।

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

हिन्दुस्तान टेलिप्रिन्टर लिमिटेड की स्थापना चेन्नई में संचार उपकरणों के निर्माण के लिए सन 1960 ई. में सार्वजनिक उपक्रम के रूप में की गई।

भारत हैवी इलेक्ट्रिकल लिमिटेड की स्थापना भारी विद्युत उपकरणों के निर्माण के लिए सन 1956 ई. में उद्योग और वाण्जिय मंत्रालय के अन्तर्गत सार्वजनिक उपक्रम के रूप में की गई।

तृतीय पंचवर्षीय योजना (1961–66)

तृतीय योजना का प्रारूप बनाने का कार्य 1958 में प्रारम्भ किया गया तथा यह 1 अप्रेल, 1961 से प्रारम्भ हुई। इसका प्रारम्भिक प्रारूप मार्च, 1960 को राष्ट्रीय विकास परिषद की बैठक में प्रस्तुत किया गया तथा जुलाई, 1960 में इसे प्रकाशित किया गया।

इस योजना के मुख्य उद्देश्य निम्न प्रकार थे–

1. राष्ट्रीय आय में प्रतिवर्ष 5 प्रतिशत की वृद्धि।
2. अन्न उत्पादन में आत्मनिर्भरता तथा उद्योगों की आवश्यकता पूर्ति एवं निर्यात के लिए कृषि उत्पादों में वृद्धि।
3. आधारभूत उद्योगों का विकास करना जिससे 10 वर्षों में देश की औद्योगिक आवश्यकताओं की आन्तरिक संसाधनों से पूर्ति की जा सके।
4 रोजगार के अवसरों में वृद्धि करना।

तीसरी योजना में 7500 करोड़ का प्रावधान सार्वजनिक क्षेत्र के लिए तथा 4100 करोड़ का प्रावधान निजी क्षेत्र के लिए किया गया।

इस योजना के दौरान दो प्रमुख बाधाएँ आयीं। सन 1962 और सन 1965 में क्रमशः चीन और पाकिस्तान से संघर्ष के कारण रक्षा बजट में वृद्धि की गई। इस योजना के दौरान भी 5 में से 3 वर्षो में पर्याप्त वर्षा नहीं हुई तथा बाहरी वित्तीय सहायता भी कम प्राप्त हुई। इन समस्याओं के बावजूद भी इस योजना ने उपलब्धियाँ अर्जित की जैसे, राष्ट्रीय आय 13.8 प्रतिशत व प्रति व्यक्ति आय 5.3 प्रतिशत की दर से बढ़ी। विनियोग की दर राष्ट्रीय आय के 11 प्रतिशत से बढ़कर 14.15 प्रतिशत हो गई और बचत की दर 8.5 प्रतिशत से बढ़कर 11.5 प्रतिशत हो गई। कृषिगत उत्पादन 16 प्रतिशत बढ़ा, औद्योगिक क्षेत्र में वृद्धि 8 प्रतिशत रही तथा आधारभूत उद्योगों में उत्पादन वृद्धि 15 प्रतिशत से 16 प्रतिशत वार्षिक रही ।

इस योजना में आर्थिक सत्ता के केन्द्रीकरण एवं एकाधिकारवादी प्रवृत्तियों पर अंकुश रखने के लिए लोक उपक्रमों को सशक्त माध्यम मानते हुए उन्हें और मजबूत बनाने का लक्ष्य रखा गया। इस योजनावधि में

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

भारतीय खनिज एवं धातु व्यापार निगम, यूनिट ट्रस्ट ऑव इंडिया, नेशनल सीड्स कारपोरेशन लिमिटेड, भारतीय खाद्य निगम, हिन्दुस्तान एयरोनोटिक्स लिमिटेड, सीमेंट कार्पोरेशन ऑव इंडिया, हिन्दुस्तान जिंक लिमिटेड, इंडस्ट्रीयल डवलपमेंट बैंक ऑव इंडिया, तथा सांभर साल्ट्स लिमिटेड आदि लोक उपक्रमों की स्थापना की गई। उपर्युक्त तीन पंचवर्षीय योजनाओं एवं तीन वार्षिक योजनाओं की प्रगति से यह स्पष्ट होता है कि आधारभूत संरचना के विकास के लिए विविध क्षेत्रों में जैसे तेल, कोयला, इस्पात धातु कृषि, खाद्य एवं बीज, सीमेन्ट, कपड़ा उद्योग पेट्रो केमिकल्स इत्यादि विभिन्न क्षेत्रों में लोक उपक्रम स्थापित किए गए। जिनकी आगे चलकर देश के आर्थिक विकास में महत्त्वपूर्ण भूमिका रही।

क्षेत्र	प्रावधान	प्रतिशत
उद्योग एवं खनिज	1520	20.0
परिवहन एवं संचार	1486	20.0
सामाजिक सेवाएं एवं विविध	1300	17.0
कृषि एवं सामुदायिक सेवाएं	1068	14.0
ऊर्जा	1012	13.0
सिंचाई	650	9.0
ग्रामीण एवं लघु उद्योग	264	4.0
विविध	200	3.0

तृतीय योजना में अर्थव्यवस्था को विकास के उच्च स्तर तक ले जाने का प्रयास किया गया तथा स्व–पोषित या आत्मनिर्भर (self sustain) वृद्धि का लक्ष्य रखा गया। सन 1962 में चीन तथा सन 1965 में पाकिस्तान के साथ युद्ध व सन 1965–66 में सूखे की मार ने इस योजना में वृद्धि के लक्ष्य को सीमित कर दिया। इस योजना की असफलता व 1966 के अवमूल्यन के पश्चात् भी निर्यातों में स्थिरता ने चौथी योजना को स्थगित करने को विवश कर दिया तथा 1966 से 1969 की अवधि में भारत में 'योजना अवकाश' रहा। चौथी पंचवर्षीय योजना (1969–74) में भी द्वितीय तथा तृतीय योजना के उद्देश्यों के अनुसार ही स्थिरता के साथ विकास, पर्याप्त वृद्धि के साथ आत्मनिर्भरता तथा सामजिक न्याय व समानता के उद्देश्य को अपनाया गया। पांचवी पंचवर्षीय योजना में आत्मनिर्भरता की प्राप्ति व निर्धनता उन्मूलन का लक्ष्य रखा गया। साथ ही इस योजना में मुद्रास्फीति को नियंत्रित करके स्थिरता लाने का उद्देश्य भी तय किया गया। जनता सरकार ने पांचवी पंचवर्षीय योजना को जो 1979 ई. में समाप्त होनी थी, एक वर्ष पूर्व समाप्त कर दिया। सन 1978–80 में दो एक वर्षीय योजनाओं के पश्चात् छठी योजना में उन्हीं उद्देश्यों के साथ न्यूनतम आवश्यकता कार्यक्रम जैसे कई कार्यक्रमों के माध्यम से निर्धनता तथा बेरोज़गारी को दूर करने के लक्ष्य रखे गए। सातवीं योजना में (1985–90) में भी वृद्धि, आधुनिकता, आत्मनिर्भरता तथा सामजिक न्याय को महत्व दिया गया किन्तु समस्या उद्देश्यों को प्राप्त करने की रही। अंतर्राष्ट्रीय तथा राजनीतिक अस्थिरता के कारण आर्थिक सुधार कालावधि में आठवीं योजना अप्रैल, 1992 से आरम्भ हुई। इस योजना का उद्देश्य सभी संदर्भों में मानव विकास करना था,

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

इस हेतु आधारभूत ढाँचे शिक्षा, स्वास्थ्य व रोजगार से सम्बन्धित लक्ष्य निर्धारित किए गए। नवीं योजना के समय जब समस्त विश्व में खुली बाज़ार अर्थव्यवस्थाओं की अवधारणा पर बल दिया जा रहा था उस समय सरकार की विवेकशील भूमिका के साथ उत्पादकीय रोज़गार, न्यूनतम आधारभूत सुविधाओं को उपलब्ध करवाने तथा विकास के अन्य सामान्य लक्ष्य प्राप्त करने का उद्देश्य रखा गया। नवीं योजना के दौरान अच्छे निष्पादन से उत्साहित होकर दसवीं योजना में 8 प्रतिशत की वार्षिक वृद्धि दर का लक्ष्य रखा गया। दसवीं योजना में मज़बूत निजी क्षेत्र के सापेक्ष सरकारी क्षेत्र की भूमिका को पुनः परिभाषित करने का प्रयास किया गया। साथ ही सभी राज्यों के संतुलित विकास करने, ऊर्जा–सुधार, तकनीकी उन्नति के साथ आर्थिक गतिविधियों की कुशलता बढाने के प्रयास किए गए। यह योजना सफल योजना रही जिसमें 7.9 प्रतिशत की वृद्धि दर प्राप्त हुई। ग्यारहवीं योजना में न केवल तीव्र वृद्धि बल्कि समावेशी विकास लक्ष्य तथा बारहवीं योजना में भी तीव्र, सतत एवं अधिक समावेशी विकास का लक्ष्य रखा गया।

वर्तमान सरकार ने योजना आयोग के स्थान पर राष्ट्रीय भारत परिवर्तन संस्था (नीति आयोग) (NITI – National Institution for the Transformation of India) की स्थापना 2015 में की। यह भारत सरकार को प्रमुख नीति निर्माण में दिशात्मक और नीतिगत विचार प्रदान करती है। भारत सरकार के लिए रणनीतिक और दीर्घकालिक नीतियों और कार्यक्रमों की रूपरेखा तैयार करते हुए यह केन्द्र और राज्यों को प्रासंगिक तकनीकी सलाह भी प्रदान करता है। योजना आयोग के विकास के ऊपर से नीचे के दृष्टिकोण के स्थान पर यह आयोग विकास के नीचे से ऊपर के दृष्टिकोण पर विश्वास करता है। नीति आयोग को स्थापित हुए अभी ज्यादा समय नहीं हुआ है। आयोग में आंतरिक मतभेद भी नजर आये हैं। राज्यों का विश्वास अर्जित करने में भी आयोग को और अधिक प्रयास करने होंगे।

अभ्यास प्रश्न

1. भारत में योजना आयोग की स्थापना किस वर्ष की गई ?
2. स्वतंत्रता के समय देश में कौनसी समस्याएँ थी ?
3. विश्वविद्यालय अनुदान आयोग की स्थापना संसद के एक्ट से किस सन में हुई ?
4. भारत में पंचवर्षीय योजनाओं की उपलब्धियों का वर्णन कीजिए।

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

संदर्भ ग्रंथ सूची

- भारतीय राष्ट्रवाद की सामाजिक पृष्ठभूमि —ए आर देसाई
- आज का भारत —रजनी पाम दत्त
- आधुनिक भारत का इतिहास —एम एस जैन
- भारत का संविधान —जयनारायण पांडेय
- भारत का संविधान —डी डी बसु
- गांधी नेहरू कॉरेस्पोंडेंस —अर्जुन देव द्वारा संपादित
- भारत का स्वतंत्रता संघर्ष —बिपन चंद्र
- आजादी के बाद का भारत —बिपन चंद्र, मृदुला मुखर्जी, आदित्य मुखर्जी
- भारत मे उपनिवेशवाद एवं राष्ट्रवाद —डॉ सत्या एम राय
- भारत का वृहद इतिहास भाग 3 —मजूमदार, राय चौधरी, दत्त
- आधुनिक भारत का इतिहास —जी एस छाबड़ा
- डिस्कवरी ऑफ इंडिया —जवाहर लाल नेहरू
- ग्लिम्प्सेस ऑफ वर्ल्ड हिस्ट्री —जवाहर लाल नेहरू
- स्ट्रगल फ़ॉर फ्रीडम —आर सी मजूमदार द्वारा संपादित (भारतीय विद्या भवन)
- ब्रिटिश पैरामाउंटसी एन्ड इंडियन रेनेसां —आर सी मजूमदार द्वारा संपादित (भारतीय विद्या भवन)

Website :

- http://planningcommission.gov.in
- http://nationalarchives.nic.in
- http://nehrumemorial.nic.in

Downloaded from https:// www.studiestoday.com